# *मौर्य साम्राज्य (ई.पू. 323 से 185 ई.पू. तक)*

मौर्य साम्राज्य की स्थापना के साथ ही भारतीय इतिहास सुदृढ़ धरा पर अवतरित होता है। विदेशी राज्यों से कूटनीतिक संबंधों की शुरुआत होती है। भारत के राजनीतिक एकीकरण एवं भारत वर्ष की वास्तविक संकल्पना दृष्टिगोचर होती है। मौर्य साम्राज्य के इतिहास के विषय में हमें विभिन्न स्रोतों से जानकारी मिलती है। उनमें से कौटिल्य का अर्थशास्त्र, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस, सोमदेव की कथा सरितसागर , क्षेमेन्द्र की वृहत्कथामंजरी, दीपवंश, महावंश टीका, भद्रबाहु के कल्पसूत्र, स्ट्रेबो, प्लूटार्क, जस्टिन आदि यूनानी यात्री, फाह्यान, ह्वेनसांग, इत्सिंग आदि चीनी यात्री, रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख एवं अशोक के अभिलेख जो हमें पुरातात्विक खुदाई के दौरान मिले हैं, आदि मुख्य स्रोत हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरु विष्णुगुप्त अथवा चाणक्य (कौटिल्य) की सहायता से नंद वंश के अन्तिम शासक घनानंद को हराकर 322 ई.पू. मौर्य साम्राज्य की स्थापना की। चन्द्रगुप्त मौर्य की 'चन्द्रगुप्त' संज्ञा का प्राचीनतम अभिलेखीय साक्ष्य रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से मिलता है।मगध के राजसिंहासन पर बैठकर चन्द्रगुप्त ने एक ऐसे साम्राज्य की नींव डाली जो सम्पूर्ण भारत में फैला था। चन्द्रगुप्त के विषय में प्लूटार्क कहता है कि "चन्द्रगुप्त ने छः लाख की सेना लेकर सम्पूर्ण भारत पर अधिकार कर लिया।"

चन्द्रगुप्त मौर्य ने उत्तरी–पश्चिमी भारत को सिकन्दर के उत्तराधिकारियों से मुक्त कर, नंद वंश का उन्मूलन कर, सेल्यूकस को पराजित कर संधि के लिए विवश करके जिस साम्राज्य की स्थापना की, उसकी सीमाएं उत्तर–पि

*अशोक–(273 ई0 पू0 से 232 ई0 पू0)*– बिन्दुसार की मृत्यु की उपरान्त अशोक विशाल मौर्य साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। करीब चार वर्ष के सत्ता–संघर्ष के बाद अशोक का विधिवत् राज्याभिषेक करीब 269 ई0 पू0 में हुआ, वैसे तो अशोक 273 ई0 पू0 में ही मगध के राजसिंहासन पर बैठ चुका था। अभिलेखों में अशोक को 'देवानामप्रिय', 'देवनाप्रियदर्शी' एवं राजा के सम्बोधन से सम्बोधित किया गया है। सर्वप्रथम मस्की अभिलेख में 'अशोक' नाम मिलता है। गूर्जरा लेख में भी इसका नाम 'अशोक' ही मिलता है। अपने राज्याभिषेक के सातवें वर्ष में अशोक ने कश्मीर एवं खोतान क्षेत्र के अनेक भागों को विजित कर मौर्य साम्राज्य में मिलाया। अशोक के प्राप्त सभी अभिलेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका साम्राज्य उ र–पश्चिमी सीमा प्रांत (अफगानिस्तान), दक्षिण में कर्नाटक, पश्चिम में काठियावाड़ एवं पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक था। कल्हण की राजतरंगिनी के अनुसार अशोक ने कश्मीर नदी के किनारे 'श्रीनगर' नामक नगर की स्थापना की तथा नेपाल में ललितपत्तन नगर बसाया।

एक युग पुरुष के रूप में अशोक ने मौर्य साम्राज्य को अपनी न

**श्रेष्ठ पवित्र नैतिकता** : श्रेष्ठ नैतिक, पवित्र आचरण, सदाचार एवं सत्यवादिता पर बल दिया।

विभिन्न वर्गों, जातियों और संस्कृतियों को एक सूत्र में बाँधने तथा अपनी प्रजा के नैतिक उत्थान के लिए अशोक ने जिन आचारों की संहिता प्रस्तुत की, उसे अभिलेखों में 'धम्म' कहा गया है। 'धम्म' के सिद्धान्त हर धार्मिक सम्प्रदाय से संबंध रखने वाले लोगों के लिए स्वीकार्य थे। अशोक के अभिलेखों में उस व्यापक नीति अर्थात् धम्म का उल्लेख किया गया, जो सामान्य व्यवहार को नए ढांचे में ढालने के लिए आवश्यक थी।

'धम्म' के बुनियादी सिद्धान्तों में अशोक ने सर्वाधिक बल सहिष्णुता पर दिया। प्रथम स्वयं व्यक्तियों की सहिष्णुता, द्वितीय विभिन्न विचारों, विश्वासों, धर्मों एवं भाषाओं में सहिष्णुता, इसे अशोक ने 7, 11 व 12वें शिलालेख व दूसरे लघु शिलालेख में उल्लेखित किया। जिसमें माता–पिता की सेवा, गुरुओं का आदर, दासों के साथ उचित व्यवहार, धर्म–सार की वृद्धि, वाक्संयम तथा सम्वाय पर बल दिया। धम्म का दूसरा बुनियादी सिद्धान्त अहिंसा था, जिसका तात्पर्य युद्ध व हिंसा द्वारा विजय प्राप्ति का त्याग और जीव हत्या का विरोध था जो प्रथम व 11वें शिलालेख व पांचवें स्तम्भ लेख में मिलते हैं।

*जनकल्याणकारी अवधारणा* – धम्म नीति में ऐसे कार्य भी शामिल थे, जो आम नागरिकों के कल्याण से संबंधित थे। जो सातवें स्तम्भ लेख व दूसरे शिलालेख में लिखित है, जिसमें वृक्षारोपण, सराय, सड़कें, सिंचाई, कुओं के निर्माण आदि की व्यवस्था थी।अशोक ने नवें शिलालेख में अंधविश्वासों के फलस्वरूप जो निरर्थक अनुष्ठान और यज्ञ होते थे, ऐसे बाह्याडम्बरों की निंदा की। प्रथम स्तम्भ लेख में धम्म की प्राप्ति के लिए धर्म यात्रा, धर्म मंगल, धर्म दान, शुश्रूषा आदि की व्यवस्था की।

अशोक दूसरे स्तम्भ लेख में धम्म की परिभाषा बताते हुए कहता है "अपासिनवे बहुकयाते दया दाने सचे सोचये माधवे साधवे च" अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति पापों से दूर रहे, कल्याणकारी कार्य करे, दया, दान, सत्य, पवित्रता व मृदुता का अवलम्बन करे। तीसरे स्तम्भ लेख में वह प्रचंडता, निष्ठुरता, क्रोध, घमण्ड एवं ईर्ष्या आदि के निषेध का कहता है, इनके लिए व्यक्ति आत्म निरीक्षण अर्थात् 'निज्झति' करे एवं सबके साथ श्रेष्ठ व्यवहार करे।

धम्म को फ्लीट ने राजधर्म, राधाकुमुद मुखर्जी ने सार्वभौम धर्म एवं भण्डारकार ने उपासक बौद्ध धर्म कहा। यद्यपि अशोक का व्यक्तिगत धर्म बौद्ध था। महावंश व दीपवंश के अनुसार अशोक ने मोगलिपुत्र तिस्स की अध्यक्षता में तृतीय बौद्ध संगीति (सभा) बुलाई और मोगलिपुत्र तिस्स की सहायता से संघ में एकता और अनुशासन लाने का प्रयास किया, इससे उसके बौद्ध होने की पुष्टि होती है। तथापि 'धम्म' में सर्वमान्य आचार तत्वों और नैतिक नियमों का समन्वय था तथा धम्म अत्यन्त ही सरल, सुबोध, पवित्र, नैतिक और व्यावहारिक था। उसका धम्म सर्वमंगलकारी था, जिसका उद्देश्य प्राणिमात्र का उद्धार करना था।

*धम्म की नीति की क्रियान्वति*– अशोक ने धम्म के प्रतिपादन हेतु व्यावहारिक उपाय किए। इस हेतु अशोक ने न केवल युद्ध की नीति का परित्याग किया, अपितु आम जन के दुःख–दर्द एवं उनकी आवश्यकताओं को समझा। उसने नौकरशाहों को तत्काल न्याय देने तथा लोकहित के कार्य करने हेतु पाबन्द किया।

अशोक ने सार्वजनिक हित के कार्य किए यथ परिवहन, सिंचाई, कुओं, सरायों आदि का निर्माण कराया। इन समस्त सार्वजनिक हित के कार्यों का उद्देश्य धम्म को स्वीकार कराना था। अशोक ने धम्म के उपदेशों को पाषाणों पर उत्कीर्ण कराया तथा ऐसी जगहों पर लगाया जहाँ पर आम जन पढ़ सके, इस तरह अशोक ने धम्म को सार्वजनिक एवं सार्वभौम बना दिया। हिंसा पर प्रतिबंध लगाया तथा पशुबलि को निषेध किया। समान नागरिक आचार संहिता, दण्ड संहिता के सिद्धान्त को जन्म दिया तथा क्रियान्वित किया। जगह–जगह धम्म आयोग भेजे एवं विदेशों में भी धम्म का प्रचार–प्रसार किया। धम्म महामात्रों की नियुक्ति की व उनके दायित्वों का प्रतिपादन किया।

*धम्म की नीति का मूल्याँकन* – यद्यपि धम्म के मूल सिद्धान्त सहिष्णुता, अहिंसा एवं सदाचार थे, जो कि भारतीय संस्कृति के प्रारम्भ से ही के मूल तत्व रहे हैं तथा वर्तमान में भी उनका महत्त्व यथावत् है। अशोक के बाद के सभी शासकों ने इन सिद्धान्तों को स्वीकार किया, तथापि समग्र रूप से यह नीति अशोक के पश्चात् फलीभूत नहीं हो सकी, इसके अनेक कारण थे। धम्म की नीतियों का अशोक के उत्तराधिकारी उसी रूप में क्रियान्वित नहीं कर सके। धम्म दुर्बल शासकों, राजनीतिक अनिश्चितता व सीमाओं की असुरक्षा के कारण फलीभूत नहीं हो सका, क्योंकि धम्म की नीति का क्रियान्वयन शान्तिकाल में ही संभव है, जब राष्ट्र आन्तरिक व बाहरी रूप से युद्धों से पूर्णतया मुक्त हो। परवर्ती शासक अशोक की दूरदर्शिता को नहीं समझ पाये, धम्म महामात्र अपने असीमित अधिकारों द्वारा जनता के कार्यों में अवांछनीय हस्तक्षेप करने लग गये। सामाजिक तनाव ज्यों के त्यों बने रहे एवं साम्प्रदायिक संघर्ष बराबर चलते रहे, क्योंकि समस्याएं व्यवस्था की जड़ों में निहित थी।

उपर्युक्त कारणों से धम्म की नीति फलीभूत नहीं हो सकी, तथापि अशोक सराहना का पात्र है कि उसने एक पथ प्रदर्शक सिद्धान्त की आवश्यकता को महसूस करते हुए धम्म की नीति का प्रतिपादन किया, जो वर्तमान में भी प्रासंगिक है।

*मौर्य प्रशासन*–

मौर्य साम्राज्य के प्रशासन की विस्तृत जानकारी इण्डिका, अर्थशास्त्र आदि ग्रंथों एवं तत्कालिक अभिलेखों से प्राप्त होती है। मौर्य प्रशासन के अन्तर्गत भारत में प्रथम बार राजनीतिक एकता देखने को मिली तथा सत्ता का केन्द्रीकरण हुआ। साम्राज्य में प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्तियों से पूर्व उनकी योग्यता एवं चरित्र को परखा जाता था, जिसे 'उपधा

परिक्षण' कहते थे। मौर्य साम्राज्य के प्रशासन का ढांचा निम्नलिखित था–

*केन्द्रीय प्रशासन*

*राजा–* राजा शासन प्रणाली का केन्द्र बिन्दु था, महत्त्वपूर्ण एवं नीति संबंधी निर्णय राजा स्वयं लेता था। व्यवस्थापिका, न्यायपालिका व कार्यपालिका की समस्त शक्तियाँ उसमें निहित थी।

*मंत्रिपरिषद्–* राजा को परामर्श देने के लिए मन्त्रिपरिषद् थी, जिनकी नियुक्ति वंश व योग्यता के आधार पर राजा करता था। अन्तिम निर्णय का अधिकार राजा का था। एक आन्तरिक परिषद् होती थी, जिसे मन्त्रिण् कहा जाता था। जिसके 3–4 सदस्य होते थे। महत्त्वपूर्ण विषयों पर राजा मन्त्रियों से परामर्श करता था।

*अधिकारी–* शीर्षस्थ राज्याधिकारी जो संख्या में 18 थे। इन्हें 'तीर्थ' कहा जाता था। वे केन्द्रीय विभागों का कार्यभार देखते थे, जिनमें कोषाध्यक्ष, कर्मान्तिक, समाहर्ता, पुरोहित एवं सेनापति प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र में 27 अध्यक्षों का उल्लेख मिलता है, जो राज्य की आर्थिक गतिविधियों का नियमन् करते थे। वे कृषि, व्यापार, वाणिज्य, बांट–माप, कताई–बुनाई, खान, वनों आदि का नियमन एवं नियंत्रण करते थे।

*नगर प्रबन्ध–* नगर प्रबन्ध हेतु 5–5 सदस्यों की 6 समितियां होती थी, जो विभिन्न कार्यों, उद्योग एवं शिल्प, विदेशियों, जनगणना, वाणिज्य–व्यापार, निर्मित वस्तुओं की देखभाल, बिक्रीकर आदि के नियमन–विपणन एवं रखरखाव का कार्य करती थी। अर्थशास्त्र के अनुसार 'नागरक' नगर प्रशासन का अध्यक्ष, गोप तथा स्थानिक उसके सहायतार्थ कर्मचारी थे।

*सेना–* सैन्य विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी सेनापति होता था। सेना की छः शाखाएँ थी। जो क्रमशः पैदल, अश्व, हाथी, रथ, यातायात एवं नौ सेना में विभक्त थी। 5–5 सदस्यों की समिति इनकी देखरेख करती थी, जबकि कौटिल्य अर्थशास्त्र में चतुरंगबल को सेना का मुख्य अंग बताता है। 'नायक' युद्धक्षेत्र में सेना का नेतृत्व करने वाला अधिकारी होता था।

*गुप्तचर व्यवस्था–* प्रशासन तन्त्र के साथ–साथ गुप्तचर्या का भी विस्तृत जाल बिछाया गया था, जो मन्त्रियों से लेकर आम जनता की गतिविधियों पर नजर रखते थे। गुप्तचरों को संस्था एवं संचार नाम से पुकारा जाता था।

*न्याय–* धर्म, व्यवहार, चरित्र एवं राजशासन न्याय संहिता के स्रोत थे। धर्मस्थीय एवं कंटक–शोधक न्यायालय क्रमशः दीवानी तथा फौजदारी मामले सुलझाते थे। न्यायपीठ पद्धति विद्यमान थी, राजा सर्वोच्च न्यायधीश था। राजुक, व्यावहारिक आदि न्यायिक अधिकारी थे। संग्रहण व द्रोणमुख स्थानीय एवं जनपद स्तर के न्यायालय होते थे। दण्ड व्यवस्था अत्यन्त कठोर थी।

*राजस्व प्रशासन–* समाहर्ता राजस्व विभाग का प्रमुख अधिकारी था। दुर्ग, राष्ट्र, व्रज, सेतु, वन, खाने, आयात–निर्यात आदि राजस्व प्राप्ति के मुख्य स्रोत थे। सन्निधाता राजकीय कोष का मुख्य अधिकारी होता था।

*जनोपयोगी कार्य–* मौर्य साम्राज्य में जनोपयोगी सेवाओं में सिंचाई, सड़क, सराय, चिकित्सा आदि को महत्त्व दिया गया, जिसकी व्यवस्था प्रशासनिक अधिकारी करते थे।

*प्रांतीय शासन –* साम्राज्य चार प्रान्तों में विभाजित था। जिनका प्रशासक राजकुमार होता था, जो मंत्रिपरिषद् एवं अमात्यों के माध्यम से शासन संचालित करता था। चार प्रमुख प्रान्त थे–उत्तरापथ,दक्षिणापथ,अवन्तिपथ एवं मध्यप्रान्त। धर्म महामात्र तथा अमात्य प्रान्तीय अधिकारी थे, जो धम्म एवं अन्य कार्य देखते थे। प्रान्तों को आहार या विषय में बाँटा गया था, जो विषयपति के अधीन होते थे।

*जनपद व ग्रामीण –* जनपद स्तर पर प्रदेष्ट, राजुक व युक्त नाम अधिकारी थे जो भूमि, न्याय व लेखों संबंधी दायित्व वहन करते थे। ग्रामिक, ग्रामीण स्तरीय अधिकारी था। गोप एवं स्थानिक जनपद व गाँवों के बीच मध्यस्थता का कार्य करते थे।

इस प्रकार मौर्यकालीन प्रशासन एक केन्द्रीयकृत व्यवस्था थी। जनमत का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थाएँ प्रायः नगण्य थी। गुप्तचर सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत मामलों में हस्तक्षेप करते थे। नौकरशाही को विस्तृत अधिकार प्राप्त थे।

*अशोक के प्रशासनिक सुधार –* अशोक ने चन्द्रगुप्त मौर्य की प्रशासनिक व्यवस्था का अनुसरण किया यद्यपि उसने अपनी नीतियों एवं उद्देश्यों के क्रियान्वयन की दृष्टि से कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन एवं सुधार भी किए। अशोक ने प्रजा को अपनी संतान बताया एवं राजा के कर्त्तव्य के रूप में सर्वलोकहित और पराक्रम को रखा, जिसका उल्लेख उसके चौथे स्तम्भ लेख एवं कलिंग पृथक लेख में मिलता है। राजुक, युक्त एवं प्रादेशिक आदि अधिकारियों की नियुक्ति की, जो न्याय भूमि व लेखा संबंधी थे। 13वें वर्ष में अशोक ने धम्म महापात्र पद का सृजन किया, जिनका कार्य विभिन्न सम्प्रदायों में सांमजस्य, अकारण दण्डितों के परिवार को सहायता प्रदान करना था। अशोक ने ऐसी व्यवस्था की, जिसमें हर समय, हर जगह राजा के पास जनता के सुख–दुःख एवं समस्याओं की खबर पहुंचे। इस हेतु अशोक ने प्रतिवेदकों की नियुक्ति की, जिसका उल्लेख छठे शिलालेख में मिलता है।

न्यायिक व्यवस्था में एकरूपता लाने के लिए 26वें वर्ष में राजुकों को न्याय संबंधी मामलों में स्वतन्त्र अधिकार प्रदान किए, जिसका उल्लेख चौथे स्तम्भ लेख में मिलता है। अशोक ने दण्डविधान को उदार बनाया एवं अमानवीय यातनाओं को बंद किया। अभिषेक दिवस पर बन्दियों को मुक्त किया, जिसका उल्लेख पांचवें स्तम्भ लेख में मिलता है। मृत्युदण्ड प्राप्त व्यक्तियों को 3 दिन का समय पश्चाताप हेतु दिया, जिसका उल्लेख चौथे स्तम्भ लेख में मिलता है। अहिंसापरक सुधारों में अशोक ने युद्ध नीति को त्यागा तथा जहाँ तक संभव हो जीव हिंसा न करने की आज्ञा दी तथा समाजों पर प्रतिबंध लगाया। अशोक ने लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को जन्म दिया तथा प्राणिमात्र के कल्याण के लिए चिकित्सा, सड़कें, कुएं व वृक्षारोपण आदि कार्यों पर बल दिया व ग्रामीण विकास को प्राथमिकता थी। स्त्राध्यक्ष, वृजभूमिक महामात्र, नगर व्यावहारिक, अन्तमहामात्र आदि की नियुक्ति क्रमशः स्त्री, पशु संरक्षण, न्याय व सीमावर्ती क्षेत्रों से संबंधित थी। इन नियुक्तियों के माध्यम से अशोक ने प्रशासन को आम जनता से जोड़ा। धम्म

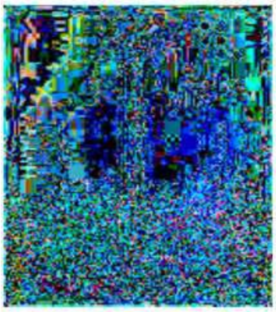
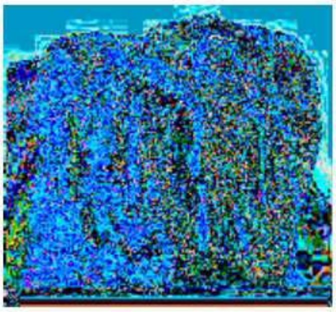

प्रयाग स्तंभ अभिलेख अमरावती मूर्तिशिल्प में अशोक

का आविष्कार करके, राजा, प्रजा एवं नौकरशाही के लिए एक संविदा तैयार की, जिससे अन्तः संबंधों में प्रगाढ़ता आई। अशोक ने वैदेशिक नीति को समसामयिक बनाया। इस प्रकार अशोक ने पूर्व प्रचलित मौर्य प्रशासन को ओर अधिक दक्ष एवं सक्षम बनाया।

## *गुप्त साम्राज्य की स्थापना, आर्थिक स्थिति, कला, साहित्य एवं विज्ञान*

*गुप्त साम्राज्य (240 ई0 से 550 ई0 तक)*

गुप्त साम्राज्य का उदय तीसरी शताब्दी के अन्त में हुआ था। विष्णु पुराण, वायु पुराण और भागवत पुराण से ज्ञात होता है कि आरम्भिक गुप्त राज्य में मगध एवं उत्तर–पश्चिम बंगाल तक गंगा नदी के तटीय के प्रदेश सम्मिलित थे।

*श्रीगुप्त (लगभग 240 ई0 – 280 ई0)*– प्रभावती गुप्ता के पूना ताम्रपत्र अभिलेख में श्रीगुप्त का उल्लेख गुप्त वंश के 'आदिराज' के रूप में किया गया है। इनका शासन काल 240ई0 से 280 ई0 तक रहा। श्रीगुप्त ने महाराज की उपाधि धारण की। श्री गुप्त स्वतंत्र शासक न होकर संभवतः किसी शासन के अन्तर्गत सामन्त थे।

*घटोत्कच (280 ई0 – 319 ई0)*– लगभग 280 ई0 में श्रीगुप्त ने घटोत्कच को अपना उत्तराधिकारी बनाया, इसने भी महाराज की उपाधि धारण की। प्रभावती गुप्ता के पूना एवं रिद्धपुर ताम्रपत्र अभिलेखों में घटोत्कच को गुप्त वंश का प्रथम राजा बताया गया है, इसका राज्य सम्भवतः मगध के आस–पास तक ही सीमित था। इसने 319ई0 तक शासन किया।

*चन्द्रगुप्त प्रथम (319ई0 – 335ई0)*– घटोत्कच के उत्तराधिकारी के रूप में सिंहासनारूढ़ चन्द्रगुप्त प्रथम एक प्रतापी राजा था,उसने उस समय के प्रसिद्ध लिच्छवि कुल की कन्या कुमार देवी से विवाह किया। इस विवाह के उपरान्त गुप्त वंश की प्रसिद्धि बढ़ने लगी। उसने 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की, जो प्रायः सर्वोच्च शासन के लिए प्रयोग की जाती है। चन्द्रगुप्त प्रथम ने एक संवत् 'गुप्त संवत्' (319–320ई0) के नाम से चलाया।

*समुद्रगुप्त (335 ई0 – 375ई0 )*– चन्द्रगुप्त प्रथम के बाद उसका पुत्र समुद्रगुप्त राजगद्दी पर बैठा। समुद्रगुप्त के दरबार में प्रसिद्ध कवि हरिषेण रहता था, जिसने प्रयाग प्रशस्ति लेख में समुद्रगुप्त के विजय अभियानों का उल्लेख किया। यह अभिलेख उसी स्तंभ पर उत्कीर्ण है, जिस पर अशोक का स्तम्भ लेख है। इसने अपनी विजयों की उद्घोषणा हेतु 'अश्वमेध यज्ञ' सम्पन्न करवाया था। समुद्रगुप्त के प्राप्त सिक्कों में कुछ पर 'अश्वमेध पराक्रम' लिखा मिलता है।

प्रयाग स्तंभ अभिलेख जो इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश में विद्यमान हैं, गुप्तकाल का महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत है। जिसमें समुन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक, दिग्विजय एवं व्यक्तित्व पर विशद् प्रकाश डाला गया है तथा कई अधिकारियों के पदों व नामों के उल्लेख से गुप्तकालीन शासन व्यवस्था की जानकारी मिलती है। अलंकारिक संस्कृत भाषा, ब्राह्मी लिपि व चम्पूशैली तात्कालिक समृद्ध साहित्य के प्रगति की प्रतीक है। प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त को "कविराज", गायन व संगीत में दक्षता में गुरु तुम्बरू व नारद को लज्जित करने वाला, लाख गायों का दानी, उच्चकोटि का विद्वान, विद्या का संरक्षक एवं धर्म का प्राचीर कहा गया। ऐरण अभिलेख में उसे पराक्रम तथा विजय का स्रोत कहा गया। अश्वमेघ प्रकार व वीणा बजाते सिक्कों आदि से समुद्रगुप्त के विद्वान, संगीतज्ञ, गायक, दानी, धर्मनिष्ठ, पराक्रमी, विनयशील तथा विजयाकांक्षी आदि वैयक्तिक गुणों का पता चलता है।

श्रीलंका के राजा मेघवर्मन ने कुछ उपहार भेजकर समुद्रगुप्त से गया में एक बौद्ध मन्दिर बनवाने की अनुमति मांगी थी। समुद्रगुप्त का साम्राज्य विस्तार में कश्मीर, पश्चिमी पंजाब, पश्चिमी राजपुताना, सिंध और गुजरात के अतिरिक्त शेष सारा भारत सम्मिलित था। समुद्रगुप्त ने भारत में एक नए युग की स्थापना की, वह अखिल भारतीय साम्राज्य के आदर्श से प्रेरित हुआ तथा सम्पूर्ण भारत वर्ष को राजनीतिक एकता के सूत्र में बाँधा।

*समुद्रगुप्त की विजय* – समुद्रगुप्त एक महान् शासन, सेनापति, कूटनीतिज्ञ, बहुआयामी प्रतिभा से युक्त यर्थाथवादी व्यक्तित्व था। उसके दरबारी कवि एवं महासंधिविग्रहक हरिषेण ने प्रयाग प्रशस्ति में अपने आश्रयदाता समुद्रगुप्त के पराक्रम व दिग्विजय का वर्णन किया है।

समुद्रगुप्त ने सर्वप्रथम आर्यवर्त अर्थात् गंगा, यमुना दोआब पर सैनिक अभियान किया। जो दो चरणों में पूरा हुआ। नौ राजाओं रूद्रवेद, मतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मन, गणपति, नाग, नागसेन, अच्चुत, नंदी एवं बलवर्मा को पराजित किया, जिन्हें राजप्रसभोद्धरण की नीति के तहत साम्राज्य में मिला लिया।

समुद्रगुप्त ने दक्षिण के 12 राज्यों कौशल, महाकान्तर, कोरल, कोट्टूर, पिष्टपुर, एरनपल्ली, कांची, अवमुक्त, वैंगी, पल्लक, देवराष्ट्र, कुस्थलपुर आदि को पराजित किया। लेकिन उसने उन्हें ग्रहणमोक्षानुग्रह की नीति अर्थात् ग्रहण (शत्रु पर अधिकार), मोक्ष (शत्रु को मुक्त करना) एवं अनुग्रह (राज्य को लौटाकर) के तहत फिर मुक्त कर दिया। वह जानता था कि इन दूरस्थ भागों पर प्रत्यक्ष शासन असंभव नहीं तो मुश्किल अवश्य था। अतः उसने ग्रहणमोक्षानुग्रह की व्यवहारिक नीति का अवलम्बन किया।

समुद्रगुप्त ने मध्य भारत के आटविकों को भी परास्त किया व उन्हें अपना भृत्य बना दिया। सीमान्त प्रदेशों के राजतन्त्रात्मक एवं गणतन्त्रात्मक राज्यों में भी भयभीत होकर अधीनता स्वीकार कर ली। जिनमें उत्तर पूर्व भारत के समतट डवाक् कामरूप, नेपाल, कर्तपुर व पश्चिमी भारत के नौ गणतन्त्र

राज्य आभीर, अर्जुनायन मालव, यौद्धेय मद्रक प्रार्जुन, सनकानिक, काक व खरपरिक थे। इनके साथ सर्वदानाज्ञाकरण प्राणायाम की नीति का अवलंबन किया।

देवपुत्र, शाहिशाहानुशाही, शक–मुरूण्ड तथा सिंहल आदि विदेशी शासकों ने समुद्रगुप्त से भयभीत होकर उससें मैत्रीयाचना की, इनके साथ आत्म–निवेदन, कन्योपायान, गुरूत्मदंकित, स्वविषय, भुक्ति, शासन याचना की नीति का अनुसरण किया।

इस प्रकार समुद्रगुप्त ने भारत के बहुत बड़े भाग को अपने अधीन कर एकता के सूत्र में बाँधा और उससे कहीं अधिक भू–भाग में उसका लोहा माना जाता था, जो उसकी यथार्थवादी नीति का प्रतीक है। स्मिथ ने समुद्रगुप्त उसकी बहादुरी एवं युद्ध कौशल के कारण भारत का नेपोलियन कहा है।

*चन्द्रगुप्त द्वितीय (375 ई0 – 414 ई0)–* समस्त गुप्त राजाओं में समुद्रगुप्त का पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय सर्वाधिक शौर्य एवं वीरोचित गुणों से सम्पन्न था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह वाकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय से किया, रूद्रसेन की मृत्यु के बाद चन्द्रगुप्त ने अप्रत्यक्ष रूप से वाकाट्क राज्य को अपने राज्य में मिलाकर उज्जैन को अपनी दूसरी राजधानी बनायी।

चीनी यात्री फाह्यान चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में भारत आया था। इसके दरबार में कालिदास एवं अमर सिंह जैसे विद्वान रहते थे। शकों को पराजित करने की स्मृति में चन्द्रगुप्त द्वितीय ने चांदी के विशेष सिक्के जारी किए। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सर्वप्रथम वैवाहिक संबंधों द्वारा अपनी स्थिति सुदृढ़ की, उसने नागवंश की कुबेर नागा तथा कदम्ब वंश की राजकुमारी से स्वयं एवं वाकाटक वंश के रूद्रसेन द्वितीय से अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह किया। इनसे प्रभावशाली शासकों की मित्रता व संरक्षण प्राप्त हो गया। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने गुप्त साम्राज्य को अरब सागर तक बढ़ाया और सौराष्ट्र प्रायद्वीप को विजित किया। उसने पश्चिमी भारत के शकों को पराजित किया तथा शक शासक रूद्रसेन तृतीय को हराया। इससे गुजरात, मालवा व कठियावाड़ गुप्त साम्राज्य के अंग बन गए। हुणों की सक्रियता को देखते हुए उसने उत्तर पश्चिम के गणराज्यों का विलय कर लिया। महरौली अभिलेख से विदित होता है कि उसने पश्चिम में बाहलिक (बैक्ट्रिया) व पूर्व में बंगाल तक अपनी सत्ता का विस्तार किया। उज्जैन को दूसरी राजधानी बनाने से राज्य के समुद्री व्यापार एवं गुजरात प्रान्त के संसाधनों में वृद्धि हुई। चन्द्रगुप्त ने अपने पराक्रम और शौर्य से गुप्त साम्राज्य की सीमाओं का चतुर्दिक विकास किया और अपना यश में वृद्धि की।

*कुमारगुप्त प्रथम (415 ई0–455 ई0)–* चन्द्रगुप्त द्वितीय के बाद उसका पुत्र कुमारगुप्त गद्दी पर बैठा। उसने बड़ी संख्या में मुद्राएं जारी करवाईं। बयाना–मुद्राभाण्ड से कुमारगुप्त की करीब 623 मुद्राएं मिली है। ह्वेनसांग ने कुमारगुप्त का नाम शक्रादित्य बताया। कुमारगुप्त को अपने शासन के अन्तिम समय में पुष्यमित्र जातियों के विद्रोह का सामना करना पड़ा। इसकी जानकारी स्कन्दगुप्त के भीतरी स्तम्भ लेख से मिलती है। यहीं से गुप्त साम्राज्य विघटन की ओर अग्रसर हुआ। संभवतः नालन्दा विश्वविद्यालय का संस्थापक कुमारगुप्त ही था।

*स्कन्दगुप्त (455 ई0–467 ई0)–* स्कन्दगुप्त को राजसिंहासन पर बैठते ही जूनागढ़–अभिलेख में मलेच्छ के रूप में उल्लिखित हूणों के आक्रमण का सामना करना पड़ा, जिसका उल्लेख भीतरी स्तम्भ लेख में मिलता है जिसमें स्कन्दगुप्त को सफलता मिली। इनकी स्वर्ण मुद्राओं पर विक्रमादित्य की उपाधि मिलती है। स्कन्दगुप्त ने सौराष्ट्र में पर्णदत्त को गवर्नर के रूप में नियुक्त किया। स्कन्दगुप्त ने गिरिनार पर्वत पर स्थित सुदर्शन झील के पुनरुद्धार का कार्य गवर्नर पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित को सौंपा था, जिसने झील के किनारे एक विष्णु मंदिर का निर्माण करवाया था।

स्कंदगुप्त के शासन के प्रारम्भ में गुप्त साम्राज्य आन्तरिक व बाहरी समस्याओं से ग्रसित था। स्कंदगुप्त के भीतरी स्तम्भ लेख, जूनागढ़ अभिलेख तथा चन्द्रगुप्त परिपृच्छा आदि अभिलेखों एवं साहित्यिक स्रोतों से हूण आक्रमण का एवं स्कंदगुप्त के द्वारा उनको पराजित करने को उल्लेख मिलता है। यह युद्ध संभवतः उत्तर–पश्चिम सीमावर्ती क्षेत्र में हुआ। स्कंदगुप्त ने बाह्य शत्रुओं, पुष्यमित्रों व हूणों को परास्त कर गुप्त साम्राज्य को भीषण संकट से बचाया एवं गुप्त साम्राज्य को स्थायित्व व व्यवस्था प्रदान की। इसके अतिरिक्त उसने वाकाटकों व नागवंश के आक्रमण को असफल कर उनके क्षेत्रों पर अधिकार कर साम्राज्य की रक्षा की व क्षेत्र में वृद्धि की। अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखा तथा सुदृढ़ प्रशासन व्यवस्था स्थापित करके साम्राज्य को स्थायित्व दिया। स्कंदगुप्त ने इन समस्याओं का धैर्य व साहस से मुकाबला किया व सफल रहा। विघटनकारी प्रवृतियों पर रोक लगाई। यह उसके शौर्य का जीवन्त प्रमाण है कि अनेकानेक विपत्तियों के होते हुए भी उसने बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब सागर तक विस्तृत अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण रखा। स्कंदगुप्त की सफलताओं का आधार उसकी प्रशासनिक व्यवस्था थी। उसने पश्चिमोत्तर सीमा का महत्त्व समझा एवं उसकी सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध किया। उसने साम्राज्य को प्रान्तों में विभक्त किया एवं योग्य प्रान्तपतियों की नियुक्ति की, जो पूर्णरूप से प्रजाहित को महत्त्व देते थे। वह प्रजापालक, उदार तथा धर्म–सहिष्णु शासक था। उसके साम्राज्य में सभी सम्प्रदायों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। उसका बुद्धिमतापूर्ण शासन, उसके शौर्यपूर्ण युद्ध, उसकी स्वदेशी भक्ति इस सबने स्कंदगुप्त को महान् गुप्त सम्राटों में से एक बना दिया। उसकी मृत्यु के साथ गुप्त साम्राज्य विघटन एवं विभाजन की दिशा में अग्रसर हुआ।

*सुदर्शन झील–* रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य के सौराष्ट्र प्रान्त के गर्वनर वैश्य पुष्यगुप्त द्वारा जनकल्याण हेतु सुदर्शन झील के निर्माण कराया एवं स्वयं रूद्रदामन द्वारा इसकी मरम्मत कराने का उल्लेख मिलता है। स्कंदगुप्त के जूनागढ़ अभिलेखानुसार भारी वर्षा के कारण टूटने से झील के बांध का पुनर्निर्माण सौराष्ट्र प्रान्त के राज्यपाल पर्णदन्त के पुत्र व गिरनार के प्रशासक चक्रपालित ने कराया। सुदर्शन झील प्राचीन भारत के शासकों द्वारा जल प्रबन्धन एवं संरक्षण का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

स्कन्दगुप्त के पश्चात पुरूगुप्त, नरसिंहगुप्त, कुमार गुप्त द्वितीय, बुद्धगुप्त, बालादित्य द्वितीय, कुमारगुप्त तृतीय और विष्णुगुप्त ने शासन किया, लेकिन धीरे–धीरे उनका राज्य सीमित

होता गया। संभवतः बंगाल के गौड़ों ने अन्तिम रूप से गुप्त साम्राज्य को समाप्त किया।

गुप्तों के पतन का मूल कारण केन्द्रीय शक्ति का दुर्बल होना था। डॉ. हेमचन्द्र रायचौधरी ने गुप्त सम्राटों का बौद्ध धर्म की ओर झुकाव को भी इनके पतन का कारण माना है। गुप्त सम्राटों ने सैनिक शक्ति और शान्तिपूर्ण विदेश नीति का पालन नहीं किया, जिसके कारण विदेशी शत्रुओं, शक्तिशाली सामन्तों एवं अधीन शासकों को लाभ उठाने का अवसर मिला।

## *गुप्त कला, साहित्य एवं विज्ञान का विकास*

प्राचीन भारत में स्थापत्य, मूर्ति एवं चित्रकला आदि क्षेत्रों में विकास की चरमसीमा गुप्तकाल में प्राप्त होती है। इस युग की कला में भारतीयकरण, सौन्दर्याभिव्यक्ति, भावचित्रण एवं आध्यात्मिकता का अंकन उल्लेखनीय है। इस काल की कला में रूढ़िवादिता का अभाव, स्वाभाविक एवं यर्थाथवादिता का अंकन, सांस्कृतिक तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के अनुरूप सृजन, आध्यात्मिक आदर्श, कला, तकनीक की सादगी और अभिव्यंजना, लावण्य और लालित्य का संयमित प्रदर्शन मिलता है।

वास्तुकला– इस काल में मन्दिर वास्तु के विकास के साथ–साथ इसके शास्त्रीय नियम भी निर्धारित हुए। गुप्तकालीन मन्दिर नागर शैली के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। आधार पीठिका, गर्भगृह, सभा–मण्डप, शिखर, अन्तराल, प्रदक्षिणा पथ तथा द्वार पर गंगा–यमुना की मूर्तियां आदि इनकी सामान्य विशेषताएं हैं। यह ईंटों व पत्थरों से निर्मित है। तिगवां का विष्णु मन्दिर, भूमरा का शिव मन्दिर, नाचना कुठार का पार्वती मन्दिर, भितरीगांव का लक्ष्मण मन्दिर व देवगढ़ का दशावतार मन्दिर आदि प्रमुख मन्दिर हैं।

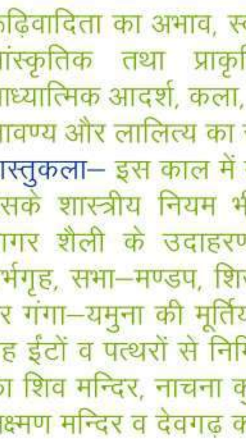
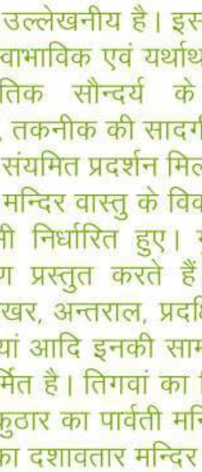
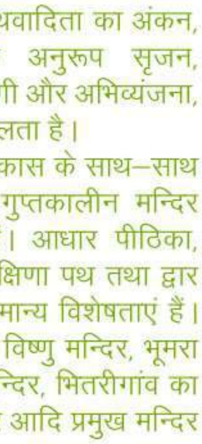

दशावतारमन्दिर,देवगढ़ लक्ष्मणमन्दिर,भितरीगांव समुद्रगुप्त का सिक्का

इनमें क्रमशः मन्दिर की योजना व आकृति में सतत् विकास दृष्टिगोचर होता है। इनके अतिरिक्त विहार, स्तूप, गुहा, चैत्य आदि निर्मित हुए, जिनमें अजंता, बाघ, एलोरा, उदयगिरी के गुहा के मन्दिर धमेख स्तूप व महाबोधि विहार (बोधगया) मुख्य है।

*मूर्तिकला*– मथुरा, सारनाथ व पाटलीपुत्र मूर्तिकला के प्रमुख केन्द्र थे। मूर्तियां धातु , पत्थर व मिट्टी की बनाई जाती थी। परिधानों की महत्ता, अलंकृत प्रभा–मण्डल, विशेष केश सज्जा, मुद्रा आसन, आध्यात्मिकता, सरलता व भारतीयकरण मूर्तिकला की प्रमुख विशेषता है। प्रतिमा निर्माण शास्त्रीय नियमों के अनुसार होता था, सुल्तानगंज की बुद्ध, मथुरा से महावीर, देवगढ़ व मथुरा की विष्णु, ऐरण व उदयगिरी की वराह की मूर्तियाँ उत्कृष्ट मूर्तिकला के उदाहरण हैं। शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की रचना भी इसी समय की गयी।

*चित्रकला* :– गुप्त चित्रकला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण अजन्ता व ग्वालियर की बाघ गुफाओं से प्राप्त हुए हैं। अजंता के चित्रों में प्राकृतिक सौन्दर्य, बुद्ध व बौधिसत्व तथा जातक ग्रंथों के वर्णात्मक दृश्यों का अंकन हुआ है। सुन्दर कल्पना, रंगों की प्रभा, रेखाओं का लालित्य, विषय वस्तु की विविधता, अभिव्यक्ति से सम्पन्नता व अभिव्यंजना के कौशल के कारण अजंता के चित्र अद्वितीय हैं। इनमें गुफा सं. 16 में उत्कीर्ण मरणासन्न राजकुमारी के सहित अवलोकिश्वर, यशोधरा व राहुल आदि चित्र प्रसिद्ध हैं। गुफा सं. 17 के चित्र को चित्रशाला कहा गया है। इस गुफा में माता और शिशु का चित्र सर्वोत्कृष्ट है। बाघ में नौ गुफाएँ मिलती हैं। बाघ के भित्ति चित्र, लौकिक जीवन से संबंधित हैं, जो तत्कालिक वेशभूषा, केश–विन्यास, प्रसाधन आदि की जानकारी देती है। यहाँ संगीत एवं नृत्य आदि के दृश्य का एक प्रसिद्ध चित्र मिलता है। संगीत, नाटक, अभिनय कला और नृत्यकला की अद्वितीय उन्नति हुई। समुद्रगुप्त का वीणा लिए हुए सिक्कों पर अंकित किया जाना, उसके संगीत प्रेम को सिद्ध करता है।

*सहित्य*– गुप्तकाल में साहित्य का अद्भुत विकास हुआ। साहित्य में संस्कृत भाष एवं जटिल अलंकारिक शैली का विकास हुआ। प्रयाग एवं महरौली आदि प्रशस्तियों की रचना हुई। भाष ने स्वप्नवासवदत्ता, शुद्रक ने मृच्छकटिकम्, विशाखदत्त ने मुद्राराक्षक, कालिदास ने अभिज्ञान शकुन्तलम् आदि सुखान्त नाटकों एवं रघुवंश जैसे महाकाव्यों की रचना की। पुराणों, स्मृतियों, रामायण एवं महाभारत आदि ग्रन्थों को अन्तिम रूप दिया गया। संस्कृत व्याकरण का विकास हुआ। अमरसिंह ने अमरकोश, चन्द्रगोमिन् ने चन्द्रव्याकरण आदि व्याकरण ग्रन्थ रचे। विष्णु शर्मा ने पंचतन्त्र नामक जैसे नीति ग्रंथ, ईश्वर कृष्ण ने सांख्यकारिका एवं दिङ्नाग ने प्रमाण समुच्चय आदि दार्शनिक ग्रंथो की रचना की, वाक्पतिराज का गोहडवो, प्रवरसेन का सेतुबंध आदि प्राकृत ग्रंथों की रचना भी इसी काल में हुई। इस युग में लौकिक साहित्य का बाहुल्य था।

*गुप्तकाल में हिन्दू विधियों का संकलन* – गुप्तकाल में मनुस्मृति के आधार पर नारद, बृहस्पति, कात्यायन, याज्ञवलक्य आदि स्मृतियों में कानून का संकलन हुआ। इनमें याज्ञवलक्य व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी है। इसमें धर्म, वर्ण, आश्रम, विधि समाज, प्रायश्चित, राज्य शास्त्र आदि पक्षों का उल्लेख है। नारद स्मृति में व्यवहार व न्यायिक विचार, बृहस्पति ने दीवानी व फौजदारी दोनों पक्षों का विवेचन किया। कात्यायन ने कानून के चार अंग धर्म, व्यवहार चरित्र और राजशासन बताया। प्राचीन भारत में यह गुप्तों की साहित्य में महत्त्वपूर्ण देन है।

*नालन्दा विश्वविद्यालय* – नालन्दा भारत का प्रमुख शिक्षा केन्द्र था। संभवत गुप्त सम्राट कुमारगुप्त प्रथम ने इसका निर्माण कराया। गुप्त एवं पूर्व मध्यकाल में इसकी ख्याति पराकाष्ठा पर थी। देश–विदेश से छात्र शिक्षा ग्रहण करने यहां आते थे। जिनका प्रवेश परीक्षा के माध्यम से होता था। शिक्षकों एवं छात्रों की संख्या 10,000 से अधिक थी। यहां धर्म, विज्ञान, उद्योग, तर्क आदि की शिक्षा दी जाती थी। यहाँ विशाल पुस्तकालय भी था। गणमति, स्थिरमति, शीलभद्र यहाँ के प्रसिद्ध कुलपति थे।

*विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी* – गुप्तकाल में विज्ञान एवं तकनीक की विभिन्न शाखाओं का उल्लेखनीय विकास हुआ। इस काल में गणित,ज्योतिष,खगोल, रसायन, भौतिक, आयुर्वेद, शल्यचिकित्सा आदि का विकास प्रमुख रूप से हुआ। आर्यभट्ट का गणित एवं ज्योतिष में विशेष स्थान था, जिन्होंने दशगितिक सूत्र, आर्याष्ट शतक ग्रंथों की रचना की। उन्होंने पृथ्वी गोल एवं उसके, धुरी पर घूर्णन का सिद्धान्त का विवेचन किया। प्रसिद्ध खगोलशास्त्री भास्कर प्रथम ने भाष्य नामक ग्रंथ व आर्यभट्ट के ग्रंथों दशगितिक सूत्र एवं आर्यष्टि शतक पर टीका लिखी। वराहमिहिर ने भारतीय एवं यूनानी ज्योतिष का समन्वय कर रोमक तथा पौलिश का सिद्धान्त प्रतिपादन किया। वराहमिहिर ने पंच सिद्धान्तिका, वृहत्संहिता व वृहत्जातक आदि ग्रंथों की रचना की। उन्होंने वर्गमूल व घनमूल निकालने की पद्धति तथा खगोल विज्ञान की विस्तृत विवेचना की। ब्रह्मगुप्त ने गणित, ज्योतिष खगोल शास्त्र पर ब्रह्मफुट सिद्धान्त खण्ड खाद्यक आदि ग्रंथ लिखे एवं गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। औषधिशास्त्र का सैद्धान्तिक पक्ष गुप्तकाल में प्रबल हुआ। वाग्भट्ट ने आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ 'अष्टांग हृदय' की रचना की, धनवन्तरी एक प्रसिद्ध आयुर्वेदिक एवं शल्य चिकित्सक थे। नवनीतकम आयुर्वेद का ग्रंथ था। इस समय वानस्पतिक औषधियों का प्रयोग होता है। पशु चिकित्सा पर भी ग्रंथ लिखे गये। पलकाप्य ने हस्तायुर्वेद नामक ग्रंथ लिखा, जो हाथियों की चिकित्सा से सम्बन्धित था।

भौतिक एवं रसायन विज्ञान के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण अध्ययन हुए। कणाद ऋषि ने गुप्त काल में वैशेषिक दर्शन एवं अणु सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। नागार्जुन रसायन तथा धातु विज्ञान के विद्वान थे। उन्होंनें चांदी, सोना आदि खनिज पदार्थों के रसायनिक प्रयोगों से रोगों के निवारण को प्रमाणित किया एवं पारद का आविष्कार किया।

तकनीक का विशेष ज्ञान श्रेणियों के पास था। धातुओं को रसायनिक क्रियाओं द्वारा पिघलाने तथा ढालने की कला की उन्नत्ति हुई। महरौली का लौह स्तम्भ सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है। सुल्तान गंज में बुद्ध की 1 टन की तांबे की खड़ी मूर्ति मिली है। सिक्के, आभूषण एवं मोहरें भी तकनीकी उपलब्धि की साक्षी है। इस प्रकार गुप्तकाल में विज्ञान व तकनीक में अभूतपूर्व विकास हुआ।

*आर्थिक जीवन*

गुप्त काल में आर्थिक जीवन समृद्ध हुआ। विस्तृत साम्राज्य एवं सुयोग्य प्रशासन के कारण आर्थिक जीवन के सभी पक्षों–कृषि, पशुपालन, उद्योग एवं शिल्प तथा व्यापार–वाणिज्य में अभूतपूर्व उन्नति हुई।

*1. कृषि*– स्मृतियों, बृहत्संहिता, अमरकोश आदि से गुप्तकालीन कृषि के बारे में जानकारी मिलती है। हल में लोहे के फाल का प्रयोग किया जाता था। बृहत्संहिता में बीजों की गुणवत्ता बढ़ाने एवं धरती की उर्वरा शक्ति में वृद्धि करने के तरीकों का उल्लेख किया गया है। कृषक अधिकांशतः वर्षा पर निर्भर होते थे, लेकिन गुप्त सम्राटों की ओर से प्रजा को सिंचाई की सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयास किया गया। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख ने अनुसार उसने गिरिनार पर्वत पर स्थित सुदर्शन झील का पुनरुद्धार करवाया। यह कार्य उसके सौराष्ट्र के गवर्नर पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने करवाया था। सिंचाई में रहट या घटीयंत्र का प्रयोग होता था।

अमरकोष में उपज की विभिन्न वस्तुओं के नाम मिलते हैं– गेहूँ , धान, ज्वार, ईख, बाजरा, मटर, दाल, तिल, सरसों, अलसी, अदरक, कालीमिर्च आदि। बृहत्संहिता में तीन फसलों का उल्लेख है। एक फसल श्रावण के महीने में तैयार होती थी, दूसरी बसंत में और तीसरी चैत्र या बैसाख मे तैयार होती थी। ह्वेनसांग के अनुसार पश्चिमोत्तर भारत में ईख व गेहूँ तथा मगध एवं उसके पूर्वी क्षेत्रों में चावल की पैदावार होती थी। अमरसिंह ने अपने ग्रंथ अमरकोष में 12 प्रकार की भूमि का उल्लेख किया है। इस समय प्रचलन में करीब 5 प्रकार की भूमि का उल्लेख मिलता है– क्षेत्र भूमि, वास्तु भूमि, चारागाह भूमि, सिल व अप्रहत भूमि इत्यादि।

पशुपालन जीविका का एक अन्य प्रमुख साधन था। कामन्दकीय नीतिसार के अनुसार गोपालन वैश्य का पेशा है। अमरकोश में पालतू पशु के रूप में गाय के अतिरिक्त घोड़े, भैंस, ऊँट, बकरी, भेड़, गधा, कुत्ता, बिल्ली आदि को गिनाया गया है। बैल हल चलाने और सामान ढोने के काम आता था।

गुप्तकालीन उद्योगों एवं शिल्पों में जहां एक ओर विशेषज्ञता का विकास दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर प्रौद्योगिकी या तकनीकी कौशल में अद्भुत प्रगति दृष्टिगोचर होती है। इस काल में धातु–शिल्प, वस्त्र–निर्माण, शिल्प साथ ही पाषाण–शिल्प, हाथीदाँत का काम आदि उद्योगों में विशेष प्रगति हुई। आभूषण, हाथीदाँत, धातुकर्म, बर्तन, जहाज उद्योग विकसित हुए। गुप्तकाल में धातु–शिल्प के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। इस काल में धातुविज्ञान के क्षेत्र में हुई अद्भुत प्रगति का एक भव्य उदाहरण मैहरोली (दिल्ली) का लौह–स्तम्भ है जो इतनी शताब्दियों बाद भी बिना जंग लगे हुए, अक्षत खड़ा है। गुप्तकालीन ताम्रशिल्प का एक श्रेष्ठ उदाहरण तांबे की विशालकाय बुद्ध की मूर्ति है जो सुलतानगंज ( जिला भागलपुर, बिहार ) से मिली थी और इस समय इंग्लैण्ड के बरमिंघमन के संग्रहालय में है। गुप्तकालीन धातुकर्म का सर्वोत्तम रूप इस काल के सिक्कों में देखा जा सकता है। इस काल के ताम्रपत्रों पर लगी हुई मुहरें भी धातुशिल्प की श्रेष्ठ उदाहरण है।

गुप्तकाल की सहस्त्रों स्वर्णमुद्रायें प्राप्त हुई है, जो विशुद्ध भी हैं तथा कलात्मक भी। गुप्तकाल की आर्थिक सम्पन्नता, कलात्मक सौन्दर्यसृष्टि तथा तकनीकी कौशल का वे ज्वंलत उदाहरण है। गुप्त सम्राटों में सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त प्रथम ने सिक्के प्रचलित किये। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय सोने के अतिरिक्त चांदी एवं तांबे का भी मुद्राओं के लिए प्रयोग किया गया। कुमारगुप्त प्रथम ने सर्वाधिक सिक्कों का प्रचलन किया। इन स्वर्ण मुद्राओं को अभिलेखों में दीनार कहा गया है। फाह्यान ने बताया कि गुप्त

'अमरकोश' में उसका उल्लेख आता है।

खाने एवं नमक आदि राजस्व के अन्य महत्त्वपूर्ण स्रोत थे। भू राजस्व कुल उत्पादन का 1/4 से 1/6 भाग तक होता था।

गुप्तकाल को प्राचीन भारत का स्वर्ण युग कहा जाता है। फाह्यान ने गुप्तकाल में धार्मिक सहिष्णुता, सरल दण्ड व्यवस्था, घरों में तालों का अभाव तथा प्याज—लहसुन के असेवन का उल्लेख किया है, जो समाज में अपराधवृत्ति की न्यूनता, सम्पत्ति की सुरक्षा, अहिंसक तथा सात्विक प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। जिन भावनाओं को जनता में पल्लवित करने हेतु मौर्य सम्राट अशोक को उपदेश देना पड़ा, वो अब स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगी। मौर्यों के पश्चात् पहली बार राजनीतिक एकता एवं सुव्यवस्था स्थापित हुई। गुप्तकाल में अर्थव्यवस्था का मौद्रीकरण हुआ। उद्योग तथा व्यापार प्रौन्नत थे। इस युग की कला में आध्यात्मिकता, शालीनता तथा भारतीयता की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। अजन्ता, बाघ के गुहा चित्र, देवगढ़ भितरी गांव आदि के मन्दिर, विष्णु, बुद्ध, महावीर की मूर्तियों आदि, इस युग की कला के चरमोत्कर्ष के द्यौतक हैं, जो सामाजिक समृद्धि एवं सौहार्द्र का प्रतीक है। साहित्य में कालिदास, हरिषेण, विष्णुशर्मा आदि ने उच्च कोटि की रचनाएं की। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, नागार्जुन आदि ने विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का विकास किया तथा भारतीय संस्कृति का भी विदेशों में प्रचार—प्रसार भी गुप्तकाल में हुआ।

निःसंदेह गुप्त युग कला, वास्तु, मूर्ति, शिल्प, चित्रकला, साहित्य, वैज्ञानिक प्रवृत्तियों के अवतरण, पल्लवन और मुद्रा प्रसारण में समग्र रूप से प्रगति का युग था। राजनीतिक एकता प्रतापी सम्राट, आर्थिक वैभव, धार्मिक सहिष्णुता, विदेशियों को हिन्दू धर्म में सम्मिलित करना, हिन्दूधर्म का पुनरुत्थान, संस्कृत साहित्य की प्रगति, सभी ललित कलाओं की उन्नति, विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रचार करने के कारण, प्राचीन भारतीय इतिहास में गुप्तकाल का स्थान श्रेष्ठ हैं। इन कार्यों के लिए निःसन्देह गुप्तकाल प्राचीन भारत का स्वर्ण युग था। श्री अरविन्द ने लिखा है कि 'भारत ने अपने इतिहास में अपनी जीवन शक्ति को विभिन्न क्षेत्रों में इतना पल्लवित होते हुए कभी नहीं देखा, जितना गुप्तकाल में विकास हुआ।'

### *फाह्यान का भारत वर्णन*

चीनी यात्री फाह्यान ने 399 ई. से 414 ई. तक भारत का भ्रमण किया था। उसने भारत की आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक व सामाजिक स्थिति का वर्णन किया है। तत्कालीन समाज में शाकाहार का प्रचलन था सामान्यतयः जनता लहसुन प्याज का सेवन नहीं करती थी। अस्पृश्यता विद्यमान थी, परन्तु आम जनता का जीवन सादा व अहिंसक था।

बौर्द्ध धर्म सीमावर्ती राज्यों में उन्नति था जबकि अपने प्रमुख स्थानों में अपनी महत्ता खो रहा था। समाज में धार्मिक समानता विद्यमान थी। ब्राह्मण धर्म भी उन्नत अवस्था में था। प्रजा दान—धर्म, पाप—पुण्य, लोक—परलोक, पुनर्जन्म में विश्वास करती थी। प्रजा सुखी थी। करों का बोझ अधिक नहीं था। दण्ड व्यवस्था कठोर नहीं थी, अपराध नगण्य थे। चोरों व डाकुओं का भय नहीं था। राज्य प्रजा के निजी विषयों में हस्तक्षेप नहीं करता था।

प्रसिद्ध नगर श्रावस्ती, वैशाली, कौशम्बी उजड़ने लगे तथा उनके स्थान पर व्यापारिक नगर उज्जैन, कन्नौज आदि समृद्ध हो गए एवं व्यापार उन्नत था। मुख्यतः कौड़ियां एवं वस्तुएँ विनियम का आधार थी। पाटलिपुत्र के निवासी सम्पन्न थे। दान देने व जनहित कार्य के लिए तैयार रहते थे।

## *हर्षकालीन भारत*

गुप्त साम्राज्य के विघटन के पश्चात हरियाणा के थानेश्वर में पुष्यभूति वंश की स्थापना हुई। हर्षचरित के अनुसार प्रभाकरवर्धन इस वंश का चौथा शासक था। उसके पश्चात् हर्षवर्धन लगभग 606 ई0 में थानेश्वर का शासक बना व 647 ई0 तक शासक किया। हर्ष ने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया।

### हर्ष की विजय एवं साम्राज्य विस्तार

हर्षवर्द्धन के साम्राज्य की वास्तविक जानकारी उसके अभिलेखों, हर्षचरित तथा ह्वेनसाँग के विवरणों से प्राप्त होती है। हर्ष ने लगभग समस्त उत्तरी भारत में विजय प्राप्त की एवं साम्राज्य का विस्तार किया। ह्वेनसाँग उसके पंच भारत की विजय का उल्लेख करता है। हर्ष 606 ई0 में सिंहासन पर बैठा। उसने सर्वप्रथम बंगाल के गौड़ों के विरूद्ध कार्यवाही की, उस समय शशांक वहाँ का शासक था। हर्ष ने कामरूप के शासक भास्कर वर्मा के साथ समझौता किया, जिससे गौड़ नरेश शशांक को सीमित कर दिया। हर्ष ने 630 ई0 से 633 ई0 के बीच वल्लभी नरेश ध्रुवसेन द्वितीय बालादित्य को पराजित किया, जो चालुक्यों से युद्ध का पूर्व चरण था। बाद में हर्ष ने वल्लभी से वैवाहिक संबंध स्थापित किया। हर्ष व पुलिकेशिन द्वितीय महत्त्वाकांक्षी शासक थे, जिन्होंने साम्राज्यवादी नीति का अवलम्बन किया। दोनों राज्यों की सीमाएं निकट होने के कारण उनके बीच युद्ध को अनिवार्य बना दिया, यह युद्ध संभवतः 630 से 634 ई0 के बीच नर्मदा नदी के तट पर हुआ होगा। ह्वेनसाँग तथा पुलिकेशिन द्वितीय की ऐहोल प्रशस्ति इस युद्ध में हर्ष की असफलता का उल्लेख करती है।

हर्ष अपने पूर्वी भारत अभियानों में सफल रहा। चीनी लेखक मा—त्वान—लीन 641 ई0 में हर्ष को मगध नरेश बताता है। संभवतः हर्ष व कामरूप के शासक भास्कर वर्मा के गठजोड़ ने बंगाल एवं पूर्वी भारत को विजित किया। 640 ई0 के आसपास ओड्र, कांगोद एवं कलिंग पर विजय प्राप्त कर, उड़ीसा पर भी विजय प्राप्त की तथा हर्ष ने उड़ीसा विजय के बाद बौद्ध सभा बुलाई, इसकी पुष्टि चीनी विवरण द्वारा होती है। बाणभट्ट के अनुसार हर्ष ने सिंध के राजा को राजलक्ष्मी से वंचित किया, जिसे पहले प्रभाकरवर्धन हरा चुका था। अब सिंध हर्ष का आश्रित राज्य हो गया। जालन्धर का उदित और प्रत्यक्षतः पूर्वी मालवा का माधव गुप्त उसके आश्रित थे। बाणभट्ट व ह्वेनसाँग कश्मीर व नेपाल पर हर्ष के आधिपत्य की बात कहते हैं। कश्मीर के राजा को हर्ष ने बुद्ध के दाँत देने के लिए बाध्य किया तथा नेपाल में हर्ष संवत् के प्रचलन से इस तथ्य की पुष्टि होती है। हर्ष के तुषार शैल अर्थात् बर्फीले पहाड़ों के दुर्गम क्षेत्र से कर वसूलने का भी उल्लेख हुआ है।

41 वर्ष के अपने शासन के दौरान हर्ष ने अपने सामंत राजाओं में दूर–दराज के क्षेत्रों यथा जालंधर, कश्मीर, नेपाल, वल्लभी, मालवा, सिंध, सीमान्त प्रदेश व असम को सम्मिलित किया। संयुक्त प्रदेश बिहार, बंगाल, उड़ीसा, मध्य भारत तथा राजपूताना हर्ष के प्रशासन के अधीन थे। अन्ततः हर्ष उत्तरी भारत के एक बहुत बड़े शासन के रूप में विद्यमान रहा। दक्षिण भारत के अभिलेखों में हर्ष को सकलोत्तरापथनाथ अर्थात् उत्तर भारत का स्वामी कहा गया है। हर्ष का साम्राज्य सामन्ती संगठन पर आधारित था। गृह राज्य पर हर्ष का सीधा प्रशासनिक नियन्त्रण था, लेकिन अन्य राज्यों पर उसका सिर्फ अप्रत्यक्ष नियन्त्रण था। हष

ने शिक्षा के प्रसार–प्रचार के लिए धन एवं ग्रामों को दान में दिया। नालंदा विश्वविद्यालय शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। इसके अतिरिक्त वल्लभी, अनेक गुरुकुल आश्रम एवं विहार शिक्षा के केन्द्र थे। इस प्रकार हर्ष ने प्रजा के बौद्धिक स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया। हर्ष ने बौद्ध धर्म के साथ–साथ अन्य धर्मों की सहिष्णुता पर बल दिया एवं उनका संरक्षण किया। ज्ञान में हर्ष ने अनेक विद्वानों को संरक्षण दिया तथा शिक्षा के प्रसार–प्रचार के लिए वित्त का पोषण किया। हर्ष को हम धर्म एवं ज्ञान का महान् संरक्षक कहते हैं।

*हर्ष का शासन प्रबन्ध*

सम्राट हर्ष स्वयं प्रशासन की धुरी था। हर्ष प्रशासनिक व्यवस्था में व्यक्तिगत रूप से रुचि लेता था। उसका विचार था कि प्रशासकीय कुशलता के लिए शासक को निरन्तर सचेष्ट रहना चाहिए। हर्ष बहुत परिश्रमी था। उसने दिन को तीन भागों में बांट रखा था, जिनमें से एक राज्य–कार्य के लिए निश्चित था। उसका व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था। हर्ष को निरीक्षण–यात्रा के लाभ में विश्वास था। यदि नगरों के निवासियों के आचार में कोई त्रुटियां होती थी, तो वह स्वयं उनके बीच चला जाता था। किन्तु उसकी यात्राएं नगरों तक ही सीमित नहीं थी। ग्रामीण क्षेत्रों की ओर भी वह उतना ही ध्यान देता था। जब राजा किसी स्थान पर ठहरता था, तो प्रजागण उससे भेंट कर सकते थे और उसके समक्ष अपनी कठिनाइयां प्रस्तुत कर सकते थे। सिद्धान्त के रूप में हर्ष का प्रशासन निरंकुश था। किन्तु लोगों को अपने– अपने क्षेत्रों में स्वशासन प्राप्त था। अधिकांश कार्य ग्रामीण समुदायों के हाथ में था। केन्द्रीय सरकार और ग्राम–सभाओं में परस्पर पर्याप्त सहयोग था। कुल मिलाकर हर्ष का प्रशासन निरंकुश तथा गणतंत्रीय तत्वों का मिश्रण था।

*मन्त्रिपरिषद्* – सम्राट की सहायता के लिए एक मंत्रिपरिषद् गठित की गयी थी। राज–सिंहासन रिक्त होने की अवस्था में परिषद् अपनी शक्ति का प्रयोग करती थी। राज्यवर्धन की मृत्यु पर मुख्य–मंत्री भण्डी ने मन्त्रि–परिषद् की सभा का आयोजन किया और हर्ष के राज–पद संभालने का प्रस्ताव रखा। वहाँ उपस्थित सभी जन सहमत हो गए और हर्ष से राज्याधिकार ग्रहण करने के लिए अनुरोध किया। मन्त्रि–परिषद को शासक चुनने में ही नहीं बल्कि विदेश–नीति में भी काफी कुछ कहने का अधिकार था।

*सचिवालय*– प्रतीत होता है कि राजधानी में एक सुव्यस्थित सचिवालय था। बाणभट्ट ने अवन्ति को विदेश तथा युद्ध मन्त्री बताया है। सिंहानन्द को उसने हर्ष का सेनापति कहा है। कुन्तल को उसने घुड़सेना का अधिकारी बताया है। स्कन्दगुप्त को हाथी सेना का प्रमुख कहा है। मधुवन ताम्र–पत्र में स्कन्दगुप्त को 'महाप्रमातार महासामन्त' कहा गया है। उसी पत्र में सामन्त महाराज ईश्वरगुप्त को रिकार्ड–संरक्षक कहा है। बांसखेड़ा ताम्र–पत्र अभिलेख में भानु को रिकार्ड–संरक्षक कहा है। मुख्य राज्य कर्मचारियों के नाम थे 'महासामन्त', 'महाराज', 'दौस्साधनिक', 'प्रमातार', 'राजस्थानीय', 'कुमारामात्य', 'उपरिक', विषयपति' इत्यादि।

उच्च प्रशासकीय सेवा में 'कुमारमात्य' नियुक्त किए गये थे। उन्हीं में से मंत्री, सचिवालय के अधिकारी और जिला अधिकारी लिए जाते थे। राजधानी के अपने राजकीय संदेशवाहक थे जिन्हें 'हर्षचरित' में 'दीर्घध्वज' कहा है। 'सर्वगतः' नामक एक कर्मचारी का उल्लेख है, जो संभवतः गुप्तचर विभाग का सदस्य था। संभवतः अधिकांश उच्च कर्मचारियों को वेतन नकद नहीं दिया जाता था। राज्य के छोटे कर्मचारियों को उनके कार्य के अनुसार नकद या भूमि के रूप में वेतन दिए जाते थे, पर ह्वेनसांग का मानना है कि मंत्रियों एंव अधिकारियों के वेतन भूमि अनुदान के रूप में दिया जाता था। यह कहा जा सकता है कि हर्ष की प्रशासन–प्रणाली देश की सामन्त–प्रणाली की अग्रगामी थी।

*सेना* – ह्वेनसाँग बताते हैं कि हर्ष के पास 5,000 हाथी, 2,000 घुड़सवार और 5,000 पैदल सैनिक थे। अपने राज्य को विस्तृत करने के बाद हर्ष ने अपनी सैन्य शक्ति को भी बढ़ाया। फिर उसके पास 60,000 हाथी और 1,00,000 घुड़सवार हो गए। घुड़सेना के लिए घोड़े सिन्धु , ईरान और कम्बोज से मंगवाये जाते थे। पैदल सेना इससे भी कई गुणा अधिक रही होगी किन्तु इसकी ठीक संख्या नहीं दी गई। साधारण सैनिकों को 'चाट' और 'भाट' कहा जाता था। घुड़सेना के अधिकारियों को 'बृहदेश्वर' कहा गया था। पैदल सेना के अधिकारियों को 'बलाधिकृत' और 'महाबलाधिकृत' कहा जाता था। प्रमुख सैन्याधिकारी को 'महासेनापति' कहा जाता था।

*साम्राज्य के भाग* – हर्ष का साम्राज्य भुक्तियों, विषयों आदि में विभक्त था। प्रान्तों को 'भुक्तियों' में बांटा गया था। हर्ष के मधुवन तथा बांसखेड़ा पत्रों में अहिछत्र भुक्ति का उल्लेख है, भुक्ति को वर्तमान में जिले समझा जा सकता है। 'भुक्ति' को कई 'विषय' में बांटा गया था। संभवतः ग्राम का प्रशासन एक मुखिया के हाथ में था, जिसे 'ग्रामक्षपटलिक' कहा जाता था। उसकी सहायता के लिए कई लेखक थे, जिन्हें 'करणिक' कहा जाता था।

*कर*– तीन प्रकार के करों का उल्लेख मिलता है, यथा 'भाग', 'हिरण्य' और 'बलि'। 'भाग' भूमि–कर था और पदार्थ रूप में दिया जाता था। 'हिरण्य' करों को कृषक या व्यापारी नकद दिया करते थे। संभवतः नाव कर भी लिया जाता था। व्यापारिक वस्तुओं पर नाप और तौल के अनुसार कर लिए जाते थे। कृषि उत्पादन में सम्राट का छठा भाग था। अनिवार्य श्रम भी लिया जाता था लेकिन उसके लिए पारिश्रमिक दिया जाता था। ह्वेनसाँग ने लिखा है कि राज–भूमि को चार भागों में बांटा गया था। एक भाग राज्य–कार्य चलाने के लिए था दूसरा भाग मंत्रियों तथा अन्य राजकर्मचारियों को वेतन देने के लिए था। तीसरा भाग सुयोग्य व्यक्तियों को पुरस्कृत करने के लिए था। चौथा भाग धार्मिक सम्प्रदायों को दान देने के लिए था।

*दण्ड–विधान*– ह्वेनसाँग यह भी बताता है कि अपराधी और विद्रोहियों की संख्या बहुत कम थी। जब कानून तोड़ा जाता था, तो अपराधियों को दण्ड दिया जाता था। शारीरिक दण्ड नहीं दिए जाते थे। अपराधियों को जीवन जंगलों में बिताने के लिए नगर से निकाल दिया जाता था। कुछ अपराधों के लिए थोड़ा–सा जुर्माना किया जाता था। अभियुक्त से अपराध स्वीकार कराने के लिए यंत्रणा नहीं दी जाती थी। परीक्षा द्वारा अपराध की जाँच करने का

ढंग भी प्रचलित था। सरकार जन हितकारी

शासक था। इस साम्राज्य विस्तारवादी शासक ने अपने शासन के आरम्भिक वर्षों में 'वण्णि' नामक स्थान पर वेलरि तथा अन्य ग्यारह शासकों की संयुक्त सेना को पराजित कर प्रसिद्धि प्राप्त की। उसकी दूसरी महत्त्वपूर्ण सफलता थी– वहैप्परन्दलई के 9 छोटे–छोटे शासकों की संयुक्त सेना को पराजित करना। संगम साहित्य के अनुसार करिकाल ने कावेरी नदी के मुहाने पर 'पुहार' पत्तम (कावेरी पट्टनम) की स्थापना की। शक्तिशाली नौ सेना रखने वाला करिकाल शायद संगम–युग का सबसे महान् एवं पराक्रमी शासक था। 'पट्टिनपालै' कृति के उल्लेख के आधार पर करिकाल ने उरैयुर को अपनी राजधानी बनाया। इसकी मृत्यु युद्ध क्षेत्र में हुई थी। उसकी प्रशंसा में संगम साहित्य के अनेक कविताओं की रचना हुई। ईसा की तृतीय शताब्दी से 9वीं शताब्दी तक चोलों का इतिहास अंधेरे में था, पर 9वीं शताब्दी के मध्य ही चोल नरेश विजयालय द्वारा पल्लवों के अवशेष पर चोल शक्ति का पुनः उद्धार किया। यह चोल राजवंश साम्राज्य 9वीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक विद्यमान रहा। चोल साम्राज्य के उत्थान में भिन्न– भिन्न शासकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

*विजयालय (850 ई. से 875 ई.)*– 9वीं शताब्दी के मध्य लगभग 850 ई0 में चोल शक्ति का पुनरुत्थान विजयालय ने किया। विजयालय को चोल साम्राज्य का द्वितीय संस्थापक भी माना जाता है। विजयालय ने पाण्ड्य शासकों से तंजौर को छीन कर उरैयुर के स्थान पर इसे अपने राज्य की राजधानी बनाया।

*आदित्य प्रथम (875 ई. से 907 ई.)*– विजयालय का पुत्र एवं उत्तराधिकारी आदित्य प्रथम लगभग 875 ई. में चोल राजसिंहासन पर बैठा था। आदित्य प्रथम ने अपनी साम्राज्य विस्तारवादी महत्त्वाकांक्षा के वशीभूत होकर पल्लव नरेश अपराजित को पराजित कर उसकी हत्या कर दी और इस तरह पल्लव राज्य पर चोलों का अधिकार हो गया। पल्लवों के अतिरिक्त उसने पाण्ड्यों एवं कलिंग देश के राजाओं को भी पराजित किया। आदित्य प्रथम के पश्चात् परान्तक प्रथम (907 ई. से 935 ई-) शासक बना, पाण्ड्य नरेश राजसिंह द्वितीय को परास्त कर पाण्ड्यों की राजधानी मदुरा पर अधिकार कर मदुरैकोण्ड की उपाधि धारण की। परान्तक प्रथम के पश्चात अरिमौलिवर्मन अथवा राजराज प्रथम प्रसिद्ध चोल शासक हुआ।

*राजराज प्रथम (985 ई. से 1014 ई.)*– राजराज प्रथम के शासन के तीस वर्ष चोल साम्राज्य के सर्वाधिक गौरवशाली वर्ष थे। इसने अपने पितामह पराकान्त प्रथम की 'लौह एवं रक्त' की नीति का पालन करते हुए 'राजराज' की उपाधि ग्रहण की। राजराज प्रथम ने अपने शासन के 9वें वर्ष में सामरिक अभियान प्रारम्भ किया। चोल सत्ता के पुनरूद्धारक राजराज प्रथम ने बड़े पैमाने पर सैनिक अभियान कर दक्षिण के पाण्ड्यों व चेर, पश्चिमी गंगों, उत्तर में कलिंग तक उत्तरी श्रीलंका, मालद्वीप आदि को विजित किया। इस अभियान के अन्तर्गत सर्वप्रथम इसने चोल विरोधी गठबंधन में शामिल पाण्ड्य, चेर एवं श्रीलंका के शासकों पर आक्रमण किया। इस संयुक्त मोर्चे को नष्ट करने के लिए उसने सर्वप्रथम चेर नरेश भास्करवर्मन को पराजित किया। चेरों के बाद राजराज ने पाण्ड्य शासक अमर भुजंग को पराजित कर राजधानी 'मदुरा' को अपने कब्जे में कर लिया।

पण्ड्य राज्य पर अधिकार के बाद राजराज प्रथम ने श्रीलंका के शासक महेन्द्र पंचम पर आक्रमण कर उसकी राजधानी 'अनुराधापुरम' को बुरी तरह नष्ट कर दिया। इस अभियान में राजराज ने अपने द्वारा जीते गये प्रदेश का नाम 'मामुण्डी चोलमण्डलम' रखा एवं 'पोलोन्नरुवा' को उसकी राजधानी बनाया। संभवतः इस विजय के बाद राजराज प्रथम ने 'जगन्नाथ' का विरुद धारण कर पोलोन्नरुवा का नया नाम 'जगजाथमंगलम्' रखा। अपने शासनकाल के अन्तिम दिनों में राजराज प्रथम ने मालद्वीप को विजित किया। प्रशासनिक सुधारों में राजराज ने भूमि का सर्वेक्षण कराया एवं स्थानीय स्वशासन को प्रोत्साहन दिया। वह धर्म–सहिष्णु, कला एवं विद्वता का संरक्षक था। नागपट्टनम में बौद्ध विहार की अनुमति दी तथा तंजौर में राजराजेश्वर का मन्दिर बनाया।

*राजेन्द्र प्रथम (1014 ई0 से 1044 ई0)*– राजराज प्रथम का पुत्र एवं उत्तराधिकारी राजेन्द्र प्रथम लगभग 1014 ई0 चोल राजसिंहासन पर बैठा। राजेन्द्र अपने पिता के समान ही योग्य शासक था। इसकी उपलब्धियों के बारे में सही जानकारी तिरुवालंगाडु एवं करंदाइ अभिलेखों से मिलती है। अपने विजय अभियान के प्रारम्भ में इसने पश्चिमी चालुक्यों, पाण्ड्यों, एवं चेरों को पराजित किया। इसके बाद लगभग 1017 ई0 में सिंहल (लंका) राज्य के विरूद्ध अभियान में उसने वहां के शासक महेन्द्र पंचम को परास्त कर सम्पूर्ण सिंहल राज्य को अपने अधिकार में कर लिया। राजेन्द्र प्रथम ने उत्तर–पूर्वी भारतीय प्रदेशों को जीतने के लिए विशाल हस्ति प्रधान सेना का इस्तेमाल किया।

राजेन्द्र प्रथम के सामरिक अभियानों में उसकी सेनाओं ने उत्तरी भारत में बंगाल के गांगेय क्षेत्र तक विजय अभियान किए। कलिंग में चोल सेनाओं ने पूर्वी गंग शासक मधुकामार्नव को पराजित किया। पूर्वी भारत में बंगाल के पाल शासक महीपाल को पराजित किया। गंगा घाटी के अभियान की सफलता पर राजेन्द्र प्रथम ने गंगैकोण्डचोल की उपाधि धारण की तथा इस विजय की स्मृति में कावेरी तट के निकट 'गंगैकोण्डचोलपुरम' नामक नई राजधानी का निर्माण करवाया, उसमें मन्दिर, तालाब आदि निर्मित कराये। उसने सिंचाई हेतु चोलगंगम नामक एक बड़े तालाब का भी निर्माण करवाया।

राजेन्द्र प्रथम ने श्री विजय (शैलेन्द्र) शासक विजयोत्तुंग वर्मन को पराजित कर जावा, सुमात्रा एवं मलाया प्रायद्वीप पर अधिकार कर लिया। राजेन्द्र प्रथम ने चालुक्यों से दक्षिण प्रदेश छीने, चेरों की सत्ता समाप्त की तथा उसकी नौ सेना ने सिंहल द्वीप, बंगाल की खाड़ी पार कर जावा, सुमात्रा एवं मलय प्रायद्वीप पर विजय प्राप्त कर एक विस्तृत चोल साम्राज्य स्थापित किया।

राजेन्द्र प्रथम कला, साहित्य एवं शिक्षा का संरक्षक था, उसने एक वैदिक महाविद्यालय भी स्थापित किया। उसने चीन से सांस्कृतिक व व्यापारिक संबंध स्थापित किए।

*राजाधिराज प्रथम (1044 ई0 1052 ई0)*– राजेन्द्र प्रथम के बाद उसका पुत्र राजाधिराज प्रथम 1044 ई0 में चोल राजगद्दी पर बैठा। उसने तत्कालिक चालुक्य नरेश सोमेश्वर को पराजित कर चालुक्य राजधानी कल्याणी पर अधिकार कर लिया। इस विजय के उपलक्ष्य में राजाधिराज ने 'विजय राजेन्द्र' की उपाधि धारण

की। तत्पश्चात् 1052 ई0 में कोप्पम के युद्ध में लड़ते हुए राजाधिराज की मृत्यु युद्ध क्षेत्र में ही हो गई। इसके छोटे भाई राजेन्द्र द्वितीय (1012 ई0 1064 ई0) ने युद्ध क्षेत्र में ही राज्याभिषेक सम्पन्न करवाया। इसके पश्चात वीर राजेन्द्र (1064ई0 से 1070 ई0) शासक बना, जिसने पश्चिम के चालुक्यों को कुंडलसंगमम् के मैदान में पराजित कर तुंगभद्रा नदी के किनारे विजय स्तम्भ की स्थापना की। 1070 ई0 में अधिराजेन्द्र शासक बना, लेकिन राज्य में हुए जन विद्रोह में उसकी हत्या गई। बाद में राजेन्द्र द्वितीय कुलोत्तुंग प्रथम नाम से शासक बना। चोल लेखों में कुलोत्तुंग को शुंगमतविर्त अर्थात् करों को हटाने वाला कहा गया है। इस वंश का अन्तिम शासक राजेन्द्र तृतीय (1250 ई0 1279ई0) था। लगभग 1279 ई0 में पाण्ड्यों ने चोल राज्य पर अधिकार कर इसे समाप्त कर दिया।

*चोल प्रशासन–* चोल प्रशासन की जानकारी अभिलेखों, तत्कालिक साहित्य एवं विदेशी यात्रियों के विवरण आदि से मिलती है। जिसकी विशिष्ट राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विशेषता थी। इसमें केन्द्रीय नियंत्रण के साथ–साथ ग्रामीण व स्थानीय स्वायत्तता का अद्भुत संतुलन था।

*केन्द्रीय प्रशासन*

चोल शासन का स्वरूप राजतन्त्रात्मक व वंशानुगत था। राजा प्रशासन का प्रधान था व उसकी सहायता हेतु अनेक अधिकारीगण थे। राजा के निजी सहायकों को उद्‌मकुटुम कहा जाता था। उच्चस्तरीय अधिकारी पेरून्दनम व निम्न स्तरीय अधिकारी सीरुतरम कहलाते थे। ओलेनायकम् प्रधान सचिव होता था।

*सैन्य संगठन–* चोल नरेशों ने साम्राज्य की सुरक्षा एवं विजयों की दृष्टि से विशाल सेना का गठन किया। जिसके पदाति, अश्वारोही, गजारोही तीन अंग थे। चोलों की स्थायी सेना में पैदल, गजारोही, अश्वारोही आदि सैनिक शामिल होते थे। 'कुंजिर–मल्लर' गजारोही दल को, 'कुदिरैच्चैवगर' अश्वारोही दल को, 'बिल्लिगढ़' धनुर्धारी दल को, 'सैगुन्दर' भाला से प्रहार करने में निपुण सैनिकों को एवं 'वेलैक्कोर' राजा के अति विश्वसनीय अंगरक्षक को कहते थे। सेना गुल्मों व छावनियों (कडगम) में रहती थी। चोल काल में सेना की टुकड़ी का नेतृत्व करने वाले को नायक तथा सेनाध्यक्ष को महादण्डनायक कहा जाता था। इनके अतिरिक्त चोलों ने एक शक्तिशाली नौ सेना बनाई। चोल शासक अपने जहाजों को व्यापारिक एवं सैनिक दोनों कार्यों के लिए प्रयुक्त करते थे। चोल नरेश राजराज प्रथम ने नौ सेना द्वारा उत्तरी श्रीलंका, मालद्वीप एवं लक्षद्वीप को विजित कर साम्राज्य विस्तार किया। राजेन्द्र प्रथम की नौ सेना ने अपनी विजय वैजयन्ती गांगेय क्षेत्र, सिंहल द्वीप, बंगाल की खाड़ी के पार जावा, सुमात्रा एवं मलय प्रायद्वीप पर फहरा दी। इस समय बंगाल की खाड़ी चोल झील बन गई। महाबलिपुरम तथा कावेरी पट्‌टनम मुख्य चोल बन्दरगाह थे।

*न्याय व्यवस्था–* राजा सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। चोल अभिलेखों में राजा के धर्मासन का अंतिम न्याय प्राप्त करने के स्थान के रूप में उल्लेख है। जहाँ पर राजा धर्मासनभट्‌ट, जो स्मृतिशास्त्र ज्ञाता ब्राह्मण विद्वान होता था, की सहायता से न्याय करता था। न्याय के लिए नियमित न्यायालयों का गठन किया गया एवं ग्राम न्यायालय व जातीय पंचायत का विधान था। छोटे विवादों पर स्थानीय निगम निर्णय देते थे। चोलों की दण्ड व्यवस्था में आर्थिक दण्ड एवं सामाजिक अपमान के दण्ड का विधान था। प्रायः आर्थिक दण्ड काशु (सोने का सिक्का) के रूप में देना पड़ता था।

*राज्य की आय के स्त्रोत–* राज्य की आय का मुख्य साधन भू–राजस्व था। भू–राजस्व निर्धारित करने से पूर्व भूमि का सर्वेक्षण, वर्गीकरण एवं नाप–जोख कराया जाता था। तत्कालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि राजराज प्रथम एवं कुलोत्तुंग के पैर की माप ही भूमि की लम्बाई मापने की इकाई बनी। भूमिकर भूमि की उर्वरा एवं वार्षिक फसल चक्र देखने के बाद निर्धारित किया जाता था। संभवतः चोल काल में भूमि कर उपज का एक तिहाई हिस्सा हुआ करता था। चोल अभिलेखों भूमि कर के अतिरिक्त अन्य करों का उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार है –

| | |
|---|---|
| आयम | राजस्वकर |
| मनैइरै | गृहकर |
| कढ़ैइरै | व्यापारिक प्रतिष्ठानों पर लगने वाला कर |
| मगन्मै | व्यवसाय कर |
| आजीवकाशु | आजीविका पर लगने वाला कर |

राजस्व विभाग का उच्च अधिकारी वरित्पोत्तगकक् कहा जाता था। व्यापार–वाणिज्य, आयात–निर्यात, सिंचाई कर आदि आय के अन्य साधन थे। राजस्व प्रशासनिक एवं जनहितोपयोगी कार्यों आदि पर व्यय होता था।

*प्रान्तीय प्रशासन–* साम्राज्य विभिन्न प्रान्तों में विभाजित था। जिन्हें मण्डलम् कहा जाता था। इनके प्रशासक को 'मण्डल मुडालि' कहते थे। मण्डल–मुडालि सामान्यतः राजपरिवार के सदस्य होते थे, जिन्हें राजा नियुक्त करता था। प्रान्तों के अपने अधिकारी, सेना एवं न्यायालय होते थे। प्रान्तों का विभाजन क्रमशः वलनाडु (कोट्‌टम), नाडु (जिला), कुर्रम (ग्राम समूह) एवं ग्राम में होता था।

*स्थानीय प्रशासन–* चोल प्रशासन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता ग्रामीण एवं नगरीय स्तर पर स्थानीय स्वायत्तता की व्यवस्था थी। जो प्रतिनिधि संस्थाओं उर, सभा, महासभा एवं नगरम् के द्वारा संचालित होता था। इनके सदस्यों के लिए शैक्षणिक, आर्थिक तथा नैतिक योग्यताएं अनिवार्य थी। ये निर्वाचित सदस्यों को 'पेरु मक्कल' कहा जाता था। ये सदस्य समितियों, जिन्हें 'वारियम' कहा जाता था, के माध्यम से सिंचाई व्यवस्था, भूमि विवरण, लगान एवं करों की वसूली, मन्दिरों की देखरेख, न्याय आदि प्रशासनिक कार्यों की देखभाल करते थे। उर सामान्य वयस्क पुरुष कर दाताओं की सभा थी, जबकि सभा, महासभा में सिर्फ ब्राह्मण सदस्य होते थे। इनको आन्तरिक स्वायत्तता प्राप्त थी। केन्द्रीय हस्तक्षेप न के बराबर था। वस्तुतः ग्राम लघु गणतंत्र ही थे, इस प्रकार चोल प्रशासन सुसंगठित एवं कार्य कुशल शासन था।

*चोल कला–* चोलकाल में पौराणिक, शैव एवं वैष्णव धर्मों का पुनर्जागरण हुआ। नयनार (शैव) व आलवार (वैष्णवों) ने अपने

प्रवचनों तथा भजनों से दक्षिण को आप्लवित किया। चोल स्वयं शैव धर्मानुयायी थे तथापि वे धार्मिक सहिष्णु थे। उन्होंने शैव मन्दिरों के निर्माण के साथ–साथ वैष्णव मन्दिरों का निर्माण तथा जैन बौद्ध विहारों को अनुदान दिया। मन्दिरों ने सांस्कृतिक, धार्मिक व आर्थिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

चोल कला प्रेमी एवं महान् निर्माता थे। उन्होंने विशाल राज प्रासाद, कृत्रिम झीलें, विस्तीर्ण बाँध, सुन्दर नगर, धातु एवं पाषाण की मूर्तियां तथा भव्य मन्दिरों का निर्माण कराया। चोल स्थापत्य की मुख्य देन मन्दिर निर्माण है। इन मन्दिरों का निर्माण द्रविड़ शैली के अन्तर्गत हुआ। महान् चोल शासकों ने अपने शासन काल में द्रविड़ स्थापत्य कला शैली को विकास के चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। उनके द्वारा निर्मित मन्दिरों की मुख्य विशेषताएं विशाल व वर्गाकार विमान, मध्य में विस्तृत आंगन, अलंकृत गोपुरम, मण्डप, अन्तराल सजावट के लिए पारम्परिक सिंह ब्रेकेट तथा संयुक्त स्तम्भों का प्रयोग आदि हैं। चोलकालीन प्रारम्भिक मंदिरों में तिरुकट्टलाई का सुन्दरेश्वर मंदिर, नरतमलाई का विजयालय चोलेश्वर मन्दिर प्रसिद्ध है। राजराज का वृहदेश्वर, राजेन्द्र प्रथम का गंगैकोण्डचोलपुरम तथा कोरंग नाथ, ऐरातेश्वर, त्रिभुवनेश्वर आदि अन्य प्रमुख मन्दिर हैं।

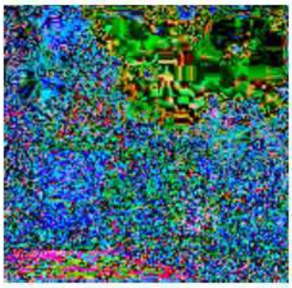
गंगैकोण्डचोलपुरम

बृहदीश्वर मंदिर,तजौर

तंजौर में स्थित राजराज प्रथम द्वारा निर्मित राजराजेश्वर अथवा बृहदीश्वर मंदिर को चोल स्थापत्य कला का चरमोत्कर्ष माना जाता है। इस मंदिर के निर्माण में द्रविड़ कला शैली का पूर्ण विकास हुआ है। इस मंदिर का निर्माण (1003 ई0 –1111 ई0) में हुआ। इस मंदिर का आयाताकार प्रांगण 160 मीटर लम्बा एवं 80 मीटर चौड़ा है। मंदिर का सर्वाधिक आकर्षण भाग है, गर्भगृह के ऊपर पश्चिम में बना 60 मीटर ऊँचा विमान, उसके ऊपर 3.50 मीटर ऊँचा पिरामिडाकार का शीर्षभाग है। मंदिर के आधार तल के वर्गाकार कक्ष में 2.25 मीटर चौड़ा प्रदक्षिणा–पथ निर्मित है। गर्भगृह में एक विशाल शिवलिंग की स्थापना की गयी। पर्सी ब्राउन ने तंजौर के बृहदीश्वर मंदिर के विमान को 'भारतीय वास्तुकला का निकष' माना। गंगेकोण्डचोलपुरम के मंदिर का निर्माण राजराज के पुत्र राजेन्द्र प्रथम ने करवाया था। इस मंदिर का आधार 105 मीटर लम्बा एवं 50 मीटर चौड़ा है। इसका आठ मंजिला विमान लगभग 50 मीटर ऊँचा है। इस मंदिर को द्रविड़ चोल मंदिर कला की परिणति कहा जा सकता है। इस काल के कुछ अन्य मन्दिरों में तंजौर में स्थित दार सुरम् का ऐरावतेश्वर मंदिर एवं त्रिभुवनम् का कंपहरेश्वर मंदिर उल्लेखनीय है। चोल कला का प्रभाव इण्डो–चीन तथा सुदूर पूर्व के देशों पर पड़ा, जिसका प्रमुख उदाहरण अंकोरवाट का महान् मन्दिर है।

स्थापत्य के साथ–साथ तक्षण कला के क्षेत्र में भी चोल कलाकारों ने सफलता प्राप्त की। इस काल में उत्कृष्ट तक्षणकला के उदाहरण ब्रह्मा, विष्णु, नटराज, राजा–रानियों आदि की पाषाण, कांस्य व अष्टधातु की मूर्तियों हैं। इस काल में धातु मुर्तियों में 'नटराज शिव' की कांस्य मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। शिवमूर्ति के अलावा पार्वती, स्कन्द, कार्तिकेय एवं गणेश आदि शैव देवताओं की मूर्तियां कांस्य द्वारा बनी। मूर्तिकला, भवन निर्माण कला की सहायक कला के रूप में भी विकसित हुई। मंदिरों की दीवारों एवं छतों पर इनका प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ। चोल चित्रकला, पल्लव–पाण्डव शाखा का ही विकसित रूप है। भित्तिचित्र कला के अन्तर्गत बृहदीश्वर मंदिर की दीवारों पर अजन्ता की चित्रकला से प्रभावित धार्मिक चित्रकारी की गई है। शिव, कैलाश, नन्दी आदि चित्रों को उकेरा गया है। तंजावुर में उत्कृष्ट चित्रकला के उदाहरण मिलते हैं। हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के प्रसार–प्रचार के साथ–साथ दक्षिण पूर्वी एशिया में चोल स्थापत्य, शिल्प तथा चित्रकला आदि का प्रसार–प्रचार हुआ।

राजराज प्रथम ने अपने शासन के दौरान चोल अभिलेखों का प्रारम्भ 'ऐतिहासिक प्रशस्ति' के साथ करवाने की प्रथा की शुरूआत की। उसने शैलेन्द्र शासक श्रीमार विजयोत्तुंग वर्मन को नागपट्टम में 'चूड+ामणि' नामक बौद्ध विहार बनाने की अनुमति दी और साथ ही इसके निर्माण में आर्थिक सहायता भी दी। राजराज ने अपने धर्म–सहिष्णु होने का परिचय राजराजेश्वर मंदिर की दीवारों पर बौद्ध प्रतिमाओं का निर्माण करवा कर दिया।

*चोल साहित्य* – चोल शासक शिक्षा एवं साहित्य के संरक्षक थे। मन्दिर तथा ग्राम महासभाएं शिक्षा के केन्द्र थे। तमिल एवं संस्कृत भाषा का प्रचलन था। तमिल को राजाश्रय प्राप्त था। कम्बन ने रामावतार नामक ग्रंथ की रचना की। कंबन कुलोत्तुंग तृतीय के दरबार में रहते थे। इनके काल को तमिल साहित्य का स्वर्णकाल माना जाता हैं। जयन्गोन्दार ने कलितुंग पर्णी नामक ग्रंथ की रचना की। जयन्गोन्दार चोल शासक कुलोत्तुंग प्रथम का राजकवि था। शेक्किल्लार का परियापुराणम तथा पुलगेन्दी का नलबेम्ब महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं। इसके अतिरिक्त अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाओं में प्रिय पूर्णम् या शेखर की तिरुट्टोन्डपूर्णम्, नंदी का तिरुविलाईयादल पूर्णम्, अमुदनार का रामानुज नुरंदादि, तिरुकदेवर का शिवकोशीन्दमणि आदि धार्मिक ग्रंथ तथा बुद्धमित्र का विरासोलियम्, पबन्दी का नन्नौर आदि व्याकरण ग्रंथ प्रमुख हैं। जैन ग्रंथों में तिस्क्करदेवर का जीवक चिंतामणी बौद्ध ग्रंथों में कुण्डल केशी महत्त्वपूर्ण है। रामानुज, यमुनाचार्य एवं ऋग्वेद पर भाष्यकार वैकट माधव आदि ने संस्कृत ग्रंथों की रचना की।

चोल वंश की मुख्य उपलब्धियाँ उसका स्थानीय स्वशासन, नौ सेना, तमिल ग्रंथ, विशालकाय मंदिर और मूर्तियाँ हैं। इसी कारण दक्षिण भारत के इतिहास में यह काल एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से चोल वंश भारतीय इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण युग का परिचायक है।

## *कल्हण की राजतरंगिणी एवं कश्मीर का इतिहास*

कल्हण कश्मीर के लोहर वंश के शासक हर्षदेव (1068 ई.–1101 ई.) के महामात्य चंपक के पुत्र और संगीतमर्मज्ञ कनक

के अग्रज थे। कल्हण ने राजतरंगिणी की रचना लोहर वंश के अन्तिम शासक जयसिंह के समय में की। इसका रचना काल सन् 1147ई. से 1149ई. तक है। इसमें कश्मीर का इतिहास वर्णित है जो महाभारत काल से लेकर स्वयं अपने युग तक के कश्मीर के इतिहास का विवरण दिया है। भारतीय इतिहास लेखन में कल्हण की राजतरंगिणी पहली प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती है। राजतरंगिणी में आठ तरंग और संस्कृत में कुल 7826 श्लोक हैं। पहले के तीन तंरगों में कश्मीर के प्राचीन इतिहास की जानकारी मिलती है। जिसमें कश्मीर की पीढ़ी–दर–पीढ़ी से आ रही मौखिक परम्पराओं का चित्रण है। इस युग के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए उन्होंने पौराणिक स्रोतों, अनुश्रुतियों तथा मिथकों का उपयोग किया है। इस युग के राजाओं का महाभारत तथा रामायण के चरित नायकों के संबंध में जोड़ा गया है। चौथे से लेकर छठें तंरग में कार्कोट एवं उत्पन्न वंश के इतिहास का वर्णन है। केवल अंतिम दो अध्याय कल्हण की व्यक्तिगत जानकारी एवं ग्रंथावलोकन पर आधारित है। इस युग के बारे में उनकी पकड़ निश्चय ही ऐतिहासिक अभिलेखों और बौद्ध स्रोतों तक पहुंची थी। अन्तिम सातवें एवं आठवें तंरग में लोहर वंश का इतिहास उल्लिखित है। पुस्तक में घटनाओं का क्रमबद्ध उल्लेख है। कल्हण ने पक्षपातरहित होकर राजाओं के गुण एवं दोषों का उल्लेख किया है। पुस्तक के विषय के अन्तर्गत राजनीति के अतिरिक्त सदाचार एवं नैतिक शिक्षा पर भी प्रकाश डाला गया है। कल्हण ने अपने ग्रंथ राजतरंगिणी में संस्कृत भाषा का प्रयोग किया। कल्हण की राजतरंगिणी संस्कृत में उपलब्ध उन रचनाओं में पहली महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें ऐतिहासिक इतिवृत्त की विशेषताएं पाई जाती है।

'राजतरंगिणी' का शाब्दिक अर्थ है– राजाओं की नदी, जिसका भावार्थ है– 'राजाओं का इतिहास या समय–प्रवाह'। यह कवित् के रूप में है। कल्हण ने इतिहास को काव्य की विषय वस्तु बनाकर भारतीय साहित्य को एक नई विधा प्रदान की है और राष्ट्रजीवन के व्यापक विस्तार के साथ–साथ मानव प्रकृति की गहराईयों को भी छू लिया है।

राजतरंगिणी के प्रथम तरंग में बताया गया है कि सबसे पहले कश्मीर में पांडवो के सबसे छोटे भाई सहदेव ने राज्य की स्थापना की थी और उस समय कश्मीर में वैदिक धर्म ही प्रचलित था। फिर सन् 273 ईसा पूर्व कश्मीर में बौद्ध धर्म का आगमन हुआ।

राजतरंगिणी एक निष्पक्ष और निर्भय ऐतिहासिक कृति है। स्वयं कल्हण ने राजतरंगिणी में कहा है कि एक सच्चे इतिहास लेखक की वाणी को न्यायाधीश के समान राग–द्वेष–विनिर्मुक्त होना चाहिए, तभी उसकी प्रशंसा हो सकती है। कल्हण ने राजतरंगिणी की रचना पुराने राजवंशों की जानकारी देना, पाठकों का मनोरंजन करना, अतीत से शिक्षा लेना के आदि उद्देश्यों से रची गई। वे इस रचना के मूल में उनके कुछ अन्य उद्देश्य भी थे। वे कश्मीर पर शासन करने वाले विभिन्न राजवंशों की पूर्ण वंशावली भी देना चाहते थे। हर्ष की मृत्यु के बाद गृहयुद्ध तथा संघर्ष का युग आ गया था। उस समय जो अनिश्चय एवं अव्यवस्था का वातावरण व्याप्त था वह एक अन्य ऐसा तत्त्व था जिसने कल्हण को अपना इतिहास लिखने के लिए प्रेरित किया। अपने इतिहास के द्वारा वे जीवन–सांसारिक जीवन तथा भौतिक ऐश्वर्य की नश्वरता को प्रकट करना चाहते थे। उनकी यह इच्छा थी कि लोग अपने अतीत की गलतियों से सबक लें। इतिहास से सीख या सबक लेने के लिए उन्हें स्थितियों एवं घटनाओं का विश्लेषण करना पड़ा। यह विश्लेषण ही उनकी कृति को अन्य कृतियों की तुलना में विशिष्ट बना देता है।

कल्हण की कृति एक महान वीर के क्रिया–कलापों के साथ– साथ तत्कालीन समाज का वर्णन है, जिसमें कल्हण रह रहा था। उनका परिवार राजनीतिक सत्ता के काफी निकट था और उन्हें इस क्षेत्र के इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण युग के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त हुई। उन्हें राज्य की तरफ से कोई विशेष सहायता नहीं मिली। यही वजह है कि उनकी रचना अन्य प्रशस्तिपरक कृतियों से ऊपर उठ सकी। अपनी रचनाओं के लिए उन्होंने काव्य की विधा को अपनाया था, उन्होंने अपनी रचना में रसात्मकता के साथ–साथ ऐतिहासिक सत्य का संयोजन किया। उन्होंने जोर देकर कहा कि कवि को निष्पक्ष होना चाहिए।

कल्हण ने उन स्रोतो का विस्तार से हवाला दिया है जिनकी उन्होंने अपना इतिहास लिखने के लिए जाँच पड़ताल की है। उन्होंने अपने से पहले के ग्यारह विद्वानों का उल्लेख किया है जिन्होंने राजाओं की कालक्रमानुसार सूची दी और साथ ही उन्होंने उन विद्वानों की विवेचन–पद्धति की कमियों की ओर भी इशारा किया हैं। उन्होंने अनुश्रुतियों परम्पराओं और इस क्षेत्र पर लिखी गई प्रमुख रचनाओं जैसे नीलमत पुराण का उपयोग किया है। उन्होंने मंदिरों तथा अन्य भवनों में खुदे हुए अभिलेखों का उन्होंने जो युगांतरकारी उपयोग किया वह एक निश्चित प्रगति का सूचक है। साथ ही पूर्ववर्ती राजाओं द्वारा किए गये भूमिदान तथा धर्मदाय के बारे में उन्होंने अभिलेखों से जो सूचनाएँ एकत्र की उनका भी उपयोग किया है। इतिहास के तर्कसंगत स्रोतों के रूप में अभिलेखों का यह उपयोग निश्चय ही एक महान योगदान था। कल्हण ने चौथे तरंग के अंतिम भाग से अपने समय तक अर्थात 3886 लौकिक शक (813–14ई0) से 4225 लौकिक शक (1146–50 ई0) तक उसकी कालगणना और इतिहास सामग्री विस्तृत और विश्वनीय है। अपने पूर्ववर्ती "सूरियों" के 11 ग्रंथों और 'नीलमत" (पुराण) के अतिरिक्त उसने प्राचीन राजाओं के 'प्रतिष्ठाशासन', 'वास्तुशासन', 'प्रशस्तिपट्ट', 'शास्त्र' (लेख आदि), भग्नावशेष, सिक्के और लोकश्रुति आदि पुरातात्विक साधनों से यथेष्ट लाभ उठाने का गवेषणात्मक प्रयास किया है। सबसे बड़ी बात यह है कि अपने युग अवस्थाओं और व्यवस्थाओं का निकट से अध्ययन करते हुए वह भी अपनी टीका टिप्पणी में बेबाक है। और तो और अपने आश्रयदाता महाराज जयसिंह के गुण–दोष चित्रण (तरंग 8, श्लोक 1550) में भी उसने अनुपम तटस्थता का परिचय दिया है।

## *विजयनगर साम्राज्य का उदय, कला एवं साहित्य का विकास*

विजयनगर का शाब्दिक अर्थ है–'जीत का शहर'। प्रायः इस नगर को मध्ययुग का प्रथम हिन्दू साम्राज्य माना जाता है।

विजयनगर साम्राज्य का नाम तुंगभद्रा नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित इसकी राजधानी के नाम पर पड़ा। इनकी राजधानी विपुल शक्ति एवं सम्पदा की प्रतीक थी। विजयनगर के विषय में फारसी यात्री अब्दुल रज्जाक ने लिखा कि 'विजय नगर दुनिया के सबसे भव्य शहरों में से एक लगा, जो उसने देखे या सुने थे।'

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना 1336 ई0 में हरिहर तथा बुक्का नामक दो भाइयों ने की। इतिहासकारों के अनुसार दक्षिण में भारत मुस्लिम सत्ता के विस्तार के विरूद्ध यह तीव्र प्रतिक्रिया थी। उस क्षेत्र के हिन्दुओं ने इस्लामी संस्कृति के प्रभाव से हिन्दू धर्म, समाज एवं संस्कृति को सुरक्षित रखने का प्रयास किया और इस नई चेतना के फलस्वरूप विजयनगर राज्य की स्थापना संभव हुई। विद्यारण्य नामक संत ने हरिहर और बुक्का को हिन्दू धर्म में पुनः दीक्षित किया और उन्हें एक स्वतन्त्र हिन्दू राज्य के निर्माण हेतु प्रेरित किया। यह स्मरणीय है कि हरिहर और बुक्का ने युद्ध में बन्दी बनाए जाने के पश्चात् इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार विजयनगर का राज्य दक्षिण भारत की अस्थिर राजनीति और विघटनकारी प्रवृत्तियों के कारण उत्पन्न हुआ। अलाउद्दीन के समय से ही दक्षिण में विद्रोह और उपद्रव होते आए थे। मुहम्मद बिन–तुगलक के समय में 1334 ई0 में काम्पिली प्रान्त में ऐसा ही विद्रोह आरम्भ हुआ। इसके दमन के लिए हरिहर और बुक्का को सेना सहित दक्षिण भारत भेजा गया। यहाँ पहुँचकर उन्होंने स्वतन्त्र सत्ता ग्रहण कर ली और पुनः हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया। उन्होंने हिन्दू धर्म को प्रश्रय एवं प्रोत्साहन दिया। हरिहर तथा बुक्का पहले काकतीय शासक प्रताप स्वरूप के सेवक थे। कालान्तर में ये काम्पिली चले गये। कालान्तर में अनुकूल परिस्थितियों में दोनों भाइयों ने विद्यारण्य सन्त के आशीर्वाद से हिन्दू बन कर विजयनगर साम्राज्य की नींव डाली। हरिहर और बुक्का ने अपने पिता संगम के नाम पर संगम राजवंश की स्थापना की।

*संगम वंश (1336 ई.–1486 ई.)*

हरिहर प्रथम और बुक्का के द्वारा स्थापित वंश को संगम वंश का नाम दिया जाता है। हरिहर प्रथम ने और बुक्का दोनों भाइयों ने सम्राट व महाराजाधिराज की उपाधियाँ धारण नहीं की। इस वंश के शासकों ने साम्राज्य विस्तार की नीति अपनाई।

हरिहर प्रथम (1336 ई0 से 1356 ई0) – संगम वंश के प्रथम शासक हरिहर प्रथम ने अनगोन्दी के स्थान पर नवीन नगर विजय नगर को अपनी राजधानी बनाया। इसने होयसल राज्य को अपने राज्य में मिलाया तथा कदम्ब व मदुरा पर विजय प्राप्त की। उसने राज्य में कृषि विकास के कार्य किया। लगभग इसी समय बहमनी राज्य की स्थापना हुई और दक्षिण भारत में प्रभुत्व का संघर्ष आरम्भ हुआ।

बुक्का प्रथम (1356 ई0 से 1377 ई0) – हरिहर का उत्तराधिकारी उसका भाई बुक्का प्रथम सिंहासन पर बैठा। उसने मदुरा को अपने साम्राज्य में शामिल किया। सर्वप्रथम बुक्का ने कृष्णा नदी को बहमनी तथा विजयनगर साम्राज्य के मध्य की सीमा माना। बुक्का ने 'वेदमार्ग प्रतिष्ठापक' की उपाधि ग्रहण की।

हरिहर द्वितीय– बुक्का की मृत्यु के बाद उसका पुत्र हरिहर द्वितीय उत्तराधिकारी बना, जिसने 1379 ई0 से 1406 ई0 तक राज्य किया। उसने दक्षिण के रेड्डी शासकों और वारंगल के राजा को पराजित किया। उसने बेलगाँव और गोआ के क्षेत्र भी जीते और श्रीलंका के उत्तरी भाग में भी सैनिक अभियान किए। उसने महाराजाधिराज तथा राजपरमेश्वर की उपाधियाँ धारण की। उसने कनारा, त्रिचनापल्ली, कांची तथा चिगलपुर को जीत कर अपना आधिपत्य किया।

*देवराय प्रथम (1406 ई0 से 1422 ई0)* – इसके बाद देवराय प्रथम शासक बना। देवराय प्रथम ने राज्य में सिंचाई की सुविधा के लिए तुंगभद्रा नदी पर बाँध बनाकर नहरें निकाली। उसके शासनकाल में ही इटली का यात्री 'निकोलो काण्टी' विजयनगर की यात्रा पर आया। 1422 ई. में इसकी मृत्यु हो गई बाद में वीर विजय शासक बना। उसके समय में बहमनी राज्य से पुनः युद्ध हुआ। बहमनी शासक फिरोज शाह ने उसे पराजित कर दिया। इस हार का बदला देवराय द्वितीय ने लिया।

*देवराय द्वितीय – (1426 ई0 से 1446 ई0)* – अगला शासक वीरविजय का पुत्र देवराय द्वितीय हुआ। वह इन वंश के महान शासकों में से था। इसे 'इमाडिदेवराय' भी कहा जाता था। उसने आन्ध्र एवं उड़ीसा के गजपति शासक को पराजित किया। देवराय योग्य शासक होने के साथ विद्या तथा विद्वानों का संरक्षक भी था। इसके दरबार में तेलुगू कवि श्रीनाथ कुछ समय तक रहा। फारसी राजदूत अब्दुल रज्जाक देवराय द्वितीय के समय में विजयनगर आया। देवराय ने मुसलमानों को मस्जिद निर्माण की स्वतन्त्रता दे रखी थी। एक अभिलेख में देवराय द्वितीय को 'गजबेटकर' (हाथियों का शिकारी) कहा गया है। 1446 ई. में इसकी मृत्यु हो गई। देवराय द्वितीय ने संस्कृत ग्रंथ 'महानाटक सुधानिधि' एवं ब्रह्मसूत्र पर एक भाष्य लिखा। उसकी मृत्यु के पश्चात् संगम वंश का पतन तीव्र गति से हुआ। इसके बाद मल्लिकार्जुन शासक बना, जिसे प्रौढ+ देवराय भी कहा जाता है।

*विरुपाक्ष द्वितीय (1465 ई0 से 1485 ई0 )* –संगम वंश का अन्तिम शासक विरुपाक्ष के समय विजयनगर साम्राज्य विघटन की कगार पर आ गया। तब चन्द्रगिरी के गवर्नर सालुव नरसिंह ने विजयनगर राज्य की रक्षा की। विरुपाक्ष की मृत्यु के पश्चात हुई अराजकता के कारण सालुव नरसिंह राजगद्दी पर बैठा।

*सालुव वंश (1485ई.–1505ई.)*

1485ई. में नरसिंह सालुव ने सालुव वंश की स्थापना की। उसने आंतरिक शान्ति बहाल की लेकिन उड़ीसा के शासक पुरुषोत्तम गजपति ने उसे युद्ध में पराजित कर बन्दी बना लिया। अपने राज्य के कुछ क्षेत्रों को गजपतियों को सौंपकर वह पुनः स्वतन्त्र हो गया। मगर 1491ई. में उसकी मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् इम्माड़ी नरसिंह (1491ई.–1505ई.) शासक बना, वह अल्पायु था। अतः उसके संरक्षक के रूप में नरसा नायक की नियुक्ति हुई। उसने सत्ता अपने हाथ में केन्द्रित कर ली और विजयनगर की शक्ति का पुनरुद्धार किया। उसने बीजापुर, बीदर, चोल, पाण्ड्य तथा चेर राज्यों के विरूद्ध सफलता प्राप्त की तथा उड़ीसा के गजपति शासकों को भी पराजित किया।

*तुलुव वंश (1505ई.–1570ई.)*

नरसा नायक की मृत्यु पर उसके बेटे वीर नरसिंह ने

इम्माड़ी नरसिंह की हत्या कर दी, इसी के साथ सालुव वंश का अन्त हो गया तथा वीर नरसिंह ने एक नये वंश की स्थापना की, जो तुलुव वंश के नाम से जाना जाता है। इस वंश का महानतम् शासक कृष्णदेव राय था, जिसने 1509ई. से 1529 ई. के बीच शासन किया।

*कृष्णदेव राय–(1509ई. से 1529 ई.)* – कृष्णदेव राय वीर नरसिंह का छोटा भाई था। इनके शासन काल में विजयनगर ऐश्वर्य एवं शक्ति की दृष्टि से अपने चरमोत्कर्ष पर था। उस समय विजयनगर की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। उम्मत्तुर का सामन्त शासक स्वतन्त्र रूप से आचरण कर रहा था। उड़ीसा का शासक प्रतापरूद्र उदयगिरी के तटवर्ती क्षेत्रों पर अधिकार किए हुए था। बहमनी राज्य के उत्तराधिकारी राज्यों में बीजापुर, विजयनगर पर दबाव बनाए हुए था और पश्चिमी तट पर पुर्तगालियों की शक्ति सुदृढ़ होती जा रही थी। परन्तु दस वर्ष के संघर्ष में कृष्णदेव राय ने इन सभी समस्याओं का अंत किया। कृष्णदेव राय अपने सैनिक अभियानों में प्रायः सफल रहा। उसने बीदर तथा बीजापुर के शासकों सुल्तान महमूद शाह एवं युसुफ आदिल शाह को परास्त किया। उसने बहमनी सुल्तान महमूद शाह को बरीद से मुक्त कराकर पुनः सिंहासन पर बैठाया और 'यवन राज स्थापनाचार्य' की उपाधि धारण की। 1520 ई. तक कृष्णदेव राय ने अपने समस्त शत्रुओं को परास्त कर पराक्रम का परिचय दिया। दक्षिण में विजयनगर की प्रभुसत्ता स्थापित कर दी। उसने पुर्तगालियों के साथ मैत्रीपूर्ण नीति अपनाई। उसके शासनकाल में काफी बड़ी संख्या में पुर्तगाली व्यापारी और यात्री विजयनगर में आये। पुर्तगाली यात्री 'डोमिगोस पायस' ने कृष्णदेव राय के समय विजयनगर की यात्रा की। उसने भटकल में पुर्तगालियों को किला बनाने की अनुमति प्रदान की।

कृष्णदेव राय तेलुगू साहित्य का महान् विद्वान था। उसके दरबार में तेलुगू साहित्य के 8 सर्वश्रेष्ठ कवि रहते थे। स्थापत्य कला में कृष्णदेव राय ने नागलपुर नामक नये नगर की स्थापना की तथा हजारा एवं विट्ठलस्वामी नामक मंदिर का निर्माण कराया। कृष्णदेव राय की मृत्यु 1529ई. में हुई।

कृष्णदेव राय के बाद उसका छोटा भाई अच्युतराय (1529 ई. से 1542 ई.) उत्तराधिकारी हुआ, लेकिन अच्युतराय एक दुर्बल शासक होने के कारण केन्द्रीय सत्ता कमजोर हो गयी। अच्युतराय की मृत्यु के बाद उसका भतीजा सदाशिव राय सिंहासन पर बैठा। उसकी निर्बलता का लाभ उठाकर उसके मंत्री रामराय ने शासन पर नियन्त्रण कर लिया। उसने दक्षिण के मुसलमान राज्यों – बीजापुर, गोलकुण्डा, अहमदनगर और बीदर के पारस्परिक संघर्ष में हस्तक्षेप करके विजयनगर राज्य की शक्ति एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि की। उसके नेतृत्व में सेना ने अहमद नगर को खूब लूटा और मस्जिदों को तोड़ा। ऐसे में चारों मुस्लिम राज्यों की संयुक्त सेना ने विजयनगर पर आक्रमण करके 25 जनवरी 1565 ई. को तालीकोटा के युद्ध में रामराय को पराजित किया। विजयनगर पर इसके विपरीत परिणाम हुए।

*अराविडु वंश (1570 ई. से 1650 ई.)*

रामराय का भाई तिरुमाल प्रधानमंत्री बना। उसने पैनुगौड़ा को राजधानी बनाया। 1570ई. में उसने सदाशिव राय को हटाकर स्वयं सिंहासन पर अधिकार कर लिया। उसने अरविन्दु वंश की नींव रखी। विजयनगर साम्राज्य धीरे–धीरे विखंडित होता गया तथा मैसुर, बेदनूर, तंजौर आदि स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हुई। 1612 ई. में वोडियार ने मैसूर राज्य की स्थापना की। यह साम्राज्य लगभग तीन शताब्दी तक जीवित रहा, जिसने दक्षिण भारत में हिन्दू धर्म तथा संस्कृति के उत्थान में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

*सांस्कृतिक प्रगति*

मध्यकालीन दक्षिण भारत के इतिहास में विजयनगर साम्राज्य के सांस्कृतिक योगदान का विशेष महत्त्व है। दो शताब्दियों से कुछ अधिक समय तक विजयनगर का राज्य दक्षिण की राजनीति मे अपना प्रभाव बनाए रखने में सफल रहा। इस राज्य के शासकों ने सांस्कृतिक जीवन के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय योगदान दिया। हिन्दू शासकों की सत्ता के अधीन होने के कारण यह राज्य हिन्दू धर्म और संस्कृति का केन्द्र रहा। विजयनगर के शासकों ने विशेषकर हिन्दू धर्म और संस्कृति को प्रोत्साहन दिया। मध्यकाल में हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान का श्रेय विजयनगर के शासकों को दिया जाता है। विजयनगर के शासकों ने साहित्य, स्थापत्यकला, चित्रकला और संगीत आदि को प्रोत्साहन दिया। विजयनगर साम्राज्य को सांस्कृतिक गतिविधियों का उत्कृष्ट केन्द्र बना दिया। इसकी पुष्टि तत्कालीन साहित्यिक रचनाओं, अभिलेखों और विदेशी यात्रियों के वृतान्त से होती है।

*साहित्य का विकास*

विजयनगर की साहित्यिक कृतियों में धार्मिक, ऐतिहासिक, जीवन वृत्तान्त एवं काव्य संबंधी रचनाएँ उपलब्ध हैं। विजयनगर के प्रारम्भिक शासकों में बुक्का प्रथम ने अनेक धार्मिक रचनाओं के लेखन में योगदान दिया। सायण के नेतृत्व में विद्वानों के एक मण्डल ने चारों वेदों की संहिताओं सहित अनेक ब्राह्मण ग्रंथों और आरण्यकों पर भाष्य लिखे। कृष्णदेव राय के संरक्षण में ईश्वर दीक्षित ने हेमकूट नामक महाकाव्य पर दो टीकाएं लिखीं। अगस्त्य ने अनेक काव्यों की रचना की, जिनमें कुछ रचनाओं पर कृष्णदेव के मंत्री सालुआ तिम्मर ने टीका लिखी। विजयनगर का महानतम् शासक कृष्णदेव राय, एक उत्कृष्ट कोटि का कवि और लेखक था, जिसे संस्कृत एवं तेलुगू भाषाओं में प्रवीणता प्राप्त थी। उसकी तेलुगू रचना 'आमुक्त मालयदम्' थी, जो तेलुगू भाषा में पाँच महाकाव्यों में से एक है। कृष्णदेव राय ने संस्कृत में एक नाटक जाम्बवती कल्याणम् की रचना की। कृष्णदेव राय के दरबार में तेलुगू साहित्य के 8 सर्वश्रेष्ठ कवि रहते थे। साथ ही उनके दरबार में अनेक कवियों को प्रश्रय मिला, जिसमें सबसे प्रसिद्ध नाम अलसानी पेद्दन है, उन्हें तेलुगू कविता के पितामह के नाम से जाना जाता है। उसकी प्रमुख रचना 'स्वारोचितसम्भव' है। दूसरा कवि नन्दी तिम्मन था, जिसने 'परिजात हरण' की रचना की। तीसरे कवि भट्टमूर्ति ने अलंकार शास्त्र से सम्बन्धित पुस्तक 'नर सभूयालियम' की रचना की। एक अन्य कवि हरिदास था, जो वैष्णव भक्ति के विचार से प्रभावित था। कृष्णदेव राय के दरबार में तेनालीराम एक प्रसिद्ध कवि था, ने पाण्डुरंग महात्म्य की रचना की। जिसकी तुलना अकबर के प्रसिद्ध दरबारी बीरबल

से की जाती है।

साहित्यिक रचनाओं में राजनाथ का ''सालूवाभियुदय'' और भागवत–चंपू विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनका ऐतिहासिक महत्त्व भी है। शासकों की जीवनी से संबंधित रचनाओं में बुक्का प्रथम के पुत्र कुमार कम्पन की सफलताओं पर आधारित, उसकी पत्नी की काव्य रचना 'मदुरा विजयम्' है। एक दूसरी रचना तिरूवलाम्बा की वरदाम्बिकापरिणय है, जिसमें अच्युत राय और वरदाम्बिका के विवाह का वर्णन है। इन रचनाओं के अतिरिक्त दर्शन, यज्ञतंत्र आदि से संबंधित अनेक रचनाएं भी इस काल में लिखी गईं।

संस्कृत और तेलुगू भाषाओं को यद्यपि विजयनगर के शासकों ने प्राथमिकता दी, फिर भी अन्य भाषाओं के कवियों को इन्होंने प्रश्रय दिया। तमिल भाषा पहले ही विकसित अवस्था में थी और विजयनगर काल में इसकी प्रगति में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं हुआ। कन्नड़ भाषा में भी अनेक तीर्थंकरों और सन्तों की जीवनियाँ इस काल में लिखी गई। मधुर ने 'धर्मनाथ पुराण' की रचना की तथा गोमतेश्वर की स्तुति में कविताओं की रचना की। कृष्णदेव राय के दरबार में संस्कृत एवं कन्नड़ भाषाओं में विभिन्न पुस्तकों की रचना हुई, जिनमें 'भाव चिंतारण' तथा 'वीर शैवामृत' प्रमुख हैं। कृष्णदेव राय और अच्युत राय ने वैष्णवों, लिंगायतों तथा जैनों को भी संरक्षण दिया।

*कला*

विजयनगर के शासकों ने स्थापत्य कला के विकास में भी प्रशंसनीय योगदान दिया। दक्षिण भारत में मन्दिर निर्माण शैली को चरमोत्कर्ष विजयनगर के शासकों के काल में ही प्राप्त हुआ। इस शैली के सर्वोत्कृष्ट उदाहरणों में देव राय द्वितीय द्वारा निर्मित 'हजारा मन्दिर' और कृष्णदेव राय द्वारा निर्मित 'विट्ठलस्वामी के मन्दिर' का नाम लिया जा सकता है। ये मन्दिर चोलकाल में विकसित द्रविड़ शैली में ही हैं, लेकिन इनमें कुछ नई विशेषताएँ भी शामिल हैं। सबसे पहले हर मन्दिर में मण्डप के अतिरिक्त एक 'कल्याण मण्डप' का निर्माण किया गया है। यह आमतौर पर मन्दिर के आँगन के बांयी ओर बनाया जाता था। इसमें अत्यन्त अलंकृत स्तम्भों का प्रयोग होता था। इस मण्डप में देवता के विवाह समारोह का त्यौंहार मनाया जाता था। दूसरी विशेषता 'अम्मान मन्दिर' के रूप में देखी जा सकती है। एक अतिरिक्त मन्दिर था, जिसमें देवता की पत्नी की विशेष रूप से आराधना की जाती थी। इनके अतिरिक्त मन्दिर में प्रवेश द्वार बने थे। गोपुरम और मन्दिर के स्तम्भों के अलंकार पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। विजयनगर शैली के भवन तुंगभद्रा नदी से दक्षिण क्षेत्र में फैले हुए हैं। इनमें काँचीपुरम का एकाग्रनाथ नामक मन्दिर तथा ताड़पत्री स्थित रामेश्वरम् मन्दिर अपने सुन्दर गोपुरों के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है, जबकि श्रीरंग स्थित शेषगिरी मण्डप में प्रस्तुत घोड़ों की मूर्तियाँ अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है।

स्तम्भ की विविध तथा जटिल सजावट विजयनगर शैली की सबसे बड़ी विशेषता है। स्तम्भ के चारों ओर बड़े–बड़े तथा गोलाकार मूर्तियों के काफी समूह है, जिनमें पिछले पैर के बल खड़े कुछ घोड़े या कोई अलौलिक जानवरों का सर्वाधिक अंकन हैं। सब स्तम्भ और मूर्तियाँ एक ही ठोस पत्थर को काटकर निर्मित होती थी। अलंकार ही विजयनगर स्थापत्य शैली की उल्लेखनीय विशेषता है। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर विजयनगर के शासकों द्वारा सांस्कृतिक जीवन को प्रोत्साहन देने का निश्चित प्रमाण प्रस्तुत किया जा सकता है। विजयनगर की इस शैली को आगे चलकर मदुरा के नायकों द्वारा प्रोत्साहित किया गया।

विजयनगर के शासकों द्वारा अनेक महलों एवं राजप्रासादों का भी निर्माण कराया गया, जिनमें से कुछ के अवशेष साम्राज्य की राजधानी विजयनगर वर्तमान में कर्नाटक के हम्पी नामक स्थान में देखे जा सकते हैं। इन भवनों की दीवारों पर चित्रण के सुन्दर उदाहरण देखे जा सकते हैं। इनकी विशेषता यह है कि इनमें विभिन्न देशों के रहन–सहन को दर्शाया गया है। चित्रकला के अतिरिक्त मूर्तियों का निर्माण भी इस काल में प्रचुर मात्रा में हुआ। ये मूर्तियाँ अधिकतर शासकों की हुआ करती थीं, इनका निर्माण पत्थरों को काटकर या काँसे का ढालकर किया जाता था। कृष्णदेव राय और उसकी पत्नियों, वेंकट प्रथम और कुछ अन्य शासकों की कांस्य की बनी विशाल मूर्तियाँ धातुकला में विजयनगर के कारीगरों की प्रवीणता को स्पष्ट करती है।

संगीत को भी विजयनगर के शासकों ने विशेष प्रोत्साहन दिया। उनके दरबार में संगीत एवं नृत्य की लोकप्रियता रही। कृष्णदेव के दरबार मे अनेक विख्यात संगीतकार, गायक और नर्तक मौजूद थे, जिन्हें उचित सम्मान और संरक्षण प्राप्त था। संगीत एवं नृत्य संबंधी सिद्धान्तों की व्याख्या के लिए भी अनेक पुस्तकें लिखी गई। इनमें सर्वप्रथम सायण द्वारा रचित 'संगीतसार' थी। मल्लीनाथ संगीत विषय के लेखक जिन्होंने मल्लिकार्जुन

## अध्ययन बिन्दु

- ❖ चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु थे।
- ❖ अशोक ने धम्म् की नीति का प्रतिपादन किया।
- ❖ गुप्त वंश के संस्थापक श्री गुप्त थे।
- ❖ प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त की विजयों का उल्लेख मिलता है।
- ❖ प्रयाग प्रशस्ति के लेखक हरिषेण थे।
- ❖ स्कंदगुप्त ने सुदर्शन झील का पुनः निर्माण कराया।
- ❖ गुप्तकालीन चित्रकला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण अजंता व बाघ की गुफाओं से मिले।
- ❖ हर्ष के समय चीनी यात्री ह्वेनसाँग ने भारत की यात्रा की।
- ❖ हर्ष ने महायान बौद्ध धर्म को आश्रय दिया।
- ❖ चोलों ने बंगाल की खाड़ी को चोल झील बना दिया था।
- ❖ चोल शासकों ने वर्तमान के इण्डोनेशिया, श्रीलंका आदि देशों को विजित किया।
- ❖ हरिहर व बुक्का ने विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की।
- ❖ विजयनगर साम्राज्य के अवशेष वर्तमान में कर्नाटक राज्य के हम्पी में देखे जा सकते हैं।
- ❖ विजयनगर के शासकों के दक्षिण के मुस्लिम राज्यों को बार–बार पराजित किया।

## अभ्यासार्थ प्रश्न

*बहुचयनात्मक प्रश्न*

1. चन्द्रगुप्त मौर्य ने किसकी सहायता से मौर्य साम्राज्य की स्थापना की ?
   (अ) चाणक्य (ब) धनानंद
   (स) मेगस्थनीज (द) सेल्यूकस ( )

2. अशोक के धम्म की परिभाषा किस स्तंभ लेख में मिलती है ?
   (अ) प्रथम (ब) द्वितीय
   (स) चतुर्थ (द) अष्ठम् ( )

3. प्रयाग प्रशस्ति में किस गुप्त शासक की विजयों का उल्लेख है ?
   (अ) चन्द्रगुप्त प्रथम (ब) स्कंदगुप्त
   (स) समुद्रगुप्त (द) कुमारगुप्त ( )

4. किस भारतीय गणितज्ञ ने दशमलव प्रणाली का सर्वप्रथम विवेचन किया ?
   (अ) वराहमिहिर (ब) ब्रह्मगुप्त
   (स) धनवन्तरी (द) आर्यभट्ट ( )

5. निम्नलिखित रचनाओं में से किसकी रचना हर्षवर्धन ने नहीं की थी ?
   (अ) हर्षचरित (ब) नागानंद
   (स) प्रियदर्शिका (द) रत्नावली ( )

6. किस चोल शासक ने गंगैकोण्ड चोल की उपाधि धारण की ?
   (अ) राजराज प्रथम (ब) राजेन्द्र प्रथम
   (स) राजाधिराज प्रथम (द) आदित्य प्रथम ( )

7. विजयनगर के किस शासक के दरबार में आठ सर्वश्रेष्ठ कवि रहते थे ?
   (अ) कृष्णदेव राय (ब) अच्युत देव राय
   (स) देवराय प्रथम (द) देवराय द्वितीय ( )

8 .चोल प्रशासन की प्रमुख विशेषता क्या थी ?
   (अ) केन्द्रीय प्रशासन (ब) स्थानीय स्वायत्त शासन
   (स) प्रान्तीय शासन (द) सैन्य प्रशासन ( )

1. अर्थशास्त्र नामक पुस्तक की रचना किसने की ?
2. 'धम्म' का सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया ?
3. सुदर्शन झील का निर्माण किसने कराया ?
4. गुप्त संवत कब और किसने प्रचलित किया ?
5. चीनी यात्री फाह्यान किस गुप्त शासक के समय भारत आया ?
6. किस गुप्त शासक ने उज्जैन को अपनी दूसरी राजधानी बनाया ?
7. किस गुप्त शासन ने सुर्दशन झील का पुनः निर्माण कराया ?
8. भारत में मन्दिर वास्तु कला किस काल में विकसित हुई ?
9. हिन्दु विधियों का संकलन किस युग में हुआ ?
10. हर्ष के समय कौन–सा चीनी यात्री भारत आया था ?
11. हर्ष अपने राज्य की आय को कितने भागों में बाँटता था ?
12. बाणभट्ट की दो रचनाओं के नाम लिखिए।
13. करिकाल ने कहाँ व किस नगर की स्थापना की ?
14. किस चोल शासक की नौ सेना अत्यन्त विकसित थी ?
15. हरिहर व बुक्का किस महात्मा के आशीर्वाद से विजय नगर साम्राज्य की स्थापना की ?

1. मौर्य कालीन प्रान्तीय प्रशासन को बताइए ।
2. अशोक के प्रशासनिक सुधारों पर टिप्पणी लि